प्रकाशक—
रामतीर्थ प्रतिष्ठान
१४, मारवाड़ी गली
लखनऊ

मुद्रक
फाइन प्रेस
लखनऊ

दो शब्द

स्वामी राम की वाणी आत्मज्ञान से ओत-प्रोत है। स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ के इस पन्द्रहवें भाग में 'भक्तियोग-रहस्य' के नाम से उनके उन विशेष लेखों, और उपदेशों का संकलन किया गया है, जिनसे हमें भक्ति और उपासना के रहस्य का पता चलता है। वास्तव में अन्तिम कोटि की उपासना आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान से कोई भिन्न वस्तु नहीं। हमारी अपनी सम्मति में राम ने अपने उपासना लेख में भक्ति का जो रहस्य पाठकों के सामने खोलकर रक्खा है, वह सर्वथा बेजोड़ और अनुपम है। हमारा रामप्रेमियों से बार-बार अनुरोध है कि वे स्वामी राम की अमर वाणी को यथार्थतः हृदयंगम करने के लिए बार-बार इस लेख का पारायण करें। यह तो हो ही नहीं सकता कि शुद्ध हृदय से इसका अवलोकन करते ही चित्त में एक नवचेतना का संचार न हो। एवमस्तु—

आशा है, सभी प्रेमी उनकी इस दिव्य वाणी से लाभ उठावेंगे, एवं अपने प्रेमियों को भी इसे पढ़ने के लिए उत्साहित करेंगे। हरि ॐ

विजया दशमी }
संवत् २००७ }

रामेश्वरसहायसिंह, मंत्री
रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१	उपासना	१
२.	ईश्वर-भक्ति	६८
३.	ब्रह्मचर्य	९१
४.	विश्वास या ईमान	१०५
५.	आत्म-कृपा	११९



स्वामी रामतीर्थ

उपासना

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो । भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम ॥
(शु० यजु० सं० ५, ३६)

हे देव ! आप हम लोगों के पाप को हमसे पृथक् करें। हम आपकी बहुत बहुत प्रकार स्तुति करते हुए नमस्कार करते हैं।

उड़ें टेढ़ी बाँकी ये चालाकियाँ सब।
रहे ढाल तलवार इक आप ही अब ॥

मन को देव के 'पास बिठाना' उपासना है, अथवा उपासना उस अवस्था का नाम है, जहाँ रोम रोम में राम रच जाय, मन अमृत में भीग जाय, चित्त आनन्द में डूब जाय। इसके तीन दृष्टान्त हैं, जैसे (१) पत्थर की शिला का गंगा में शीतल हो जाना, (२) कपड़े की गुड़िया का अन्दर बाहर जल में निचुड़ने लग जाना, (३) और मिसरी की डली का गंगा रूप हो जाना। कभी-कभी भजन, ध्यान, आराधना, अनुसन्धान

आदि भी इसी को कहते हैं, सीधी सादी बोलचाल में ईश्वर को याद (स्मरण) करना उपासना है ।

खबरदार, भूलने न पाये !

पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ (गीता ५, ८—६)

देखते, सुनते, छूते, सूंघते, खाते, चलते, सोते, स्वास लेते, बोलते, त्यागते, ग्रहण करते, नेत्र खोलते व मीचते हुए भी ।

अटल नियम—पाठक, बहुत बातों से क्या लाभ ? एक ही बात लिखते हैं, आचरण में लाकर परताल लो, ठीक न हो तो लेखक के हाथ काट देना और जिह्वा निकाल डालना । जरा कान खोल कर सुन लो और दिल की आँख खोलकर पढ़ लो । प्यारे ! कूप में कूद कर नीचे न गिरना तो कदाचित् हो भी सके, परन्तु जगत् के किसी पदार्थ की चाह में पड़कर क्लेश से बच जाना कभी नहीं हो सकता । सूर्य्य उदय हो और प्रकाश न फैले, यह तो कदाचित् हो भी जाय ; परन्तु चित्त में पवित्र भाव और ब्रह्मानन्द होने पर भी शक्ति, श्री आदि मानों हमारी पानी भरनेवाली दासी न हो जाय, कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं। मीनार पर चढ़कर नक्कारे की चोट से पुकार दो :—

'सत्यमेव जयते नानृतम्' ॥ (मुण्ड० उप० ३, १, ६)

(सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं)

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ॥ (तैत्ति० उप० २, १, १)

(सत्य, चित और अनन्त ब्रह्म है)

वह सत्य क्या है ?

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचोविमुञ्चथ ॥

(मुण्ड० उप० २, २, ५)

उसी एक आत्मा को जानो और दूसरी सारी बातें छोड़ दो ।

बस एक आत्मज्ञान है अमृतरस की खान।
और बात बक बक बचन झक झक मरना जान॥

नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय॥ (श्वेत० उप० ३. ८)
मुक्ति के लिये और कोई मार्ग नहीं है।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये॥

(कैवल्य उप० १)

उसे जान कर मृत्यु को उलांघ जाना है। इससे इतर और मुक्ति का मार्ग नहीं है॥

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

(कठ० उप० ४, ११)

जो यहां नानत्व देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है।

असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति॥

(तैत्ति० उप० २, ६, १)

'असत् ब्रह्म है', ऐसा जो ब्रह्म को जानता है, वह स्वयं असत् होता है। 'ब्रह्म है', ऐसा जो ब्रह्म को जानता है, तो लोग उसे सत् कहते वा मानते हैं।

कभी न छूटे पीड़ दुःख से जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं॥
जे नर राम नाम लिव नाहीं। सो नर खर कुक्कुर सूकर सम वृथा जिये जग माहीं॥ (तुलसीदास)

सूर सुजान सपूत सुलक्षण गणियत गुण गरुआई।
बिन हरि भजन इंदारुण के फल तजत नहीं करुआई॥

सो संगति जल जाय कथा नहीं राम की।
बिन खेती के बाड़ भला किस काम की॥
जो नयन कि देनीर है बेनूर भले हैं॥

लक्ष्य

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ (कठ० उप १,३,३)

आत्मा को रथ का मालिक जान और शरीर को रथ। पर बुद्धि को सारथी समझ और मन को लगाम।

शरीर रूपी बग्गी में जीवात्मा ने बैठकर, बुद्धि रूपी साईस द्वारा मन की लगाम डोरी से इन्द्रियों के घोड़ों को हाँकते हाँकते आख़िर जाना कहाँ है? "विष्णोः परमं पदम्"

लक्ष्य तो ब्रह्म-तत्त्व है, ब्रह्म-साक्षात्कार बग़ैर सरेगी नहीं, अनात्म-दृष्टि दुखःरूप है। खुशी खुशी (उत्साहपूर्वक) चित्त में स्नेह मोह आदि रखते हो? भैय्या! काले नाग को गोद में दूध पिला पिला कर मत पालो। सत्य स्वरूप एक परमात्मा को छोड़ और कोई विचार मन में रखते हो? बन्दूक की गोली कलेजे में क्यों नहीं मार लेते, मार्ग में कहाँ तक डेरे डालोगे? रास्ते में कहाँ तक मेहमानियाँ खाओगे? यहाँ दुनिया-सराय में माँ तो नहीं बैठी हुई? आराम अगर भालते हो, तो चलो राम के धाम में।

उपासना की आवश्यकता

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥

(कठ० उप० १,३, ५)

पर जो विज्ञानवान् नहीं होता, और जिसका मन सदा अयुक्त होता है, उस की इन्द्रियाँ दुष्ट सारथी के घोड़ों के समान उसके वश में नहीं होतीं।

विज्ञान रहित, अयुक्त मन वाले की इन्द्रियाँ बेबस बिगड़े

घोड़ों की तरह मंज़िल तक पहुँचना तो कहाँ, रथ को और रथ में बैठे को, कुओं और गढ़ों में जा गिराती हैं, जहाँ रोना और दाँत पीसना होता है। यदि इसी जन्म के घोर रौरव से बचना इष्ट हो, तो घोड़ों को सिधाना और सीधी राह पर चलाना रूपी यम-नियम की आवश्यकता है। पर लाख यत्न कर देखो, जब तक तुम्हारा साईस (सारथी) धुंधली आँखों वाला काना सा है, तब तक कीचड़ में डूबोगे, रेत में धँसोगे, गढ़ों में गिरोगे, चोटें खाओगे और चिल्लाओगे। भाग! सांसारिक बुद्धि को सारथी बनाना दुःख ही दुःख पाना है। अब बात सुनो, फ़तह (जय) इसी में है कि अपनी मन रूपी बागडोरी दे दो, दे दो उस कृष्ण के हाथ. बस, फिर कोई ख़तरा नहीं, वह इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र से जय के साथ ले ही निकलेगा। रथ हांकने में तो वह प्रसिद्ध उस्ताद है, आवश्यकता है हरि को, रथ, घोड़े और बागें सौंप कर पास बिठाने की, अर्थात् उपासना की।

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः" ॥

(गीता १८, ६६)

सारे धर्मों को त्यागकर मुझ एक ही की तू शरण ले, मैं तुझे सारे पापों से छुड़ा लूंगा। इस लिए शोक मत कर

"संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते"

(गीता २, ६२)

विषय-संग से काम उत्पन्न होता है, काम से क्रोध उत्पन्न होता है।

पदार्थ—कामना और विषय-वासना से सर्वसाधारण पुरुषों की यह गति होती है, जैसे जल में पड़े हुए तुम्बे की आँधी और आँधि के अधीन होगी। ऐसे अनर्थ का हेतु विषय-संग तो

उपासना, हर समय ही रहे, और इस रोग की निवारक औषधि हत्या के बदले अवश्य आत्मानुसंधान कभी न की जाय, तो ऐसी आत्म· असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः" ॥

(ईश० उप० ३)

सूर्य रहित और गाढ़े अन्धकार वाले लोक, ऐसे

नरक में दारुण दुःख सहने ही पड़ेंगे। यदि काँटों पर पड़ जाने से परमेश्वर याद आता हो, तो प्यारे। जब देखो कि संसार के काम-धंधों में उलझ कर राम भूलने लगा है, झटपट अपने तईं नुकीले काँटों पर गिरा दो; और कुछ नहीं तो पीड़ा के बहाने याद आ ही जायगा; परदे में रोना, दिल को पीटना, छिप कर डाढ़ें मारना भी अवश्य फ़ायदा करेगा।

उपासना दो प्रकार की

प्रसिद्ध है:—प्रतीक और अहंग्रह।

प्रतीक उपासना में बाहर के पदार्थों में पदार्थ दृष्टि हटा कर ब्रह्म को देखना होता है। अहंग्रह उपासना में अपने अन्दर, जो अहंता ममता कल्प रक्खी है, उस से पल्ला छुड़ा कर ब्रह्म ही ब्रह्म देखना होता है। यदि बाहर के प्रतीक को सत्य जानकर ईश्वरकल्पना उसमें की जाय, तो वह ईश्वर उपासना नहीं तिमिरपूजा (बुतपरस्ती) है। इसी पर व्यासजी के ब्रह्ममीमांसा दर्शन के अध्याय ४ पाद १ सूत्र ५ में आज्ञा की है।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ (ब्रह्म सूत्र)

अर्थात् प्रतीक में ब्रह्मदृष्टि हो, ब्रह्म में प्रतीक भावना मत करो। और अहंग्रह उपासना के सम्बन्ध में यूं लिखा है।

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥ (ब्रह्ममीमांसा ४-१, ३)

अर्थात् ब्रह्म को अपना आत्मा (अपना आप) बारम्बार

चिन्तन करो। वेद का यही मत है और यही उपदेश। इन दोनों प्रकार की उपासना में अभिप्राय और लक्ष्य एक ही है, यह क्या?

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ॥

(छां० उप० ३, १४, १)

शान्त होकर इस दृश्य जगत पर यह ध्यान जमाना चाहिए कि यह सब ब्रह्म है, क्योंकि यह जगत् इस ब्रह्म से उत्पन्न हुआ इसी में लीन होता और इसी में जीता है।

ठंडी छाती से अन्दर बाहर ब्रह्म ही ब्रह्म देखो।

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः॥ (छां० उप० ३, १४, १)
यह पुरुष क्रतुमय अर्थात् अपनी इच्छाओं और निश्चयों का पुतला है।

जैसा भी पुरुष का विचार और चिन्तन रहता है, वैसा ही वह अवश्य हो जाता है। जब ऐसा हाल है, तो ब्रह्मचिन्तन ही क्यों न दृढ़ किया जाय अर्थात् अपने आपको ब्रह्मरूप ही क्यों न देखते रहें? इसी पर श्रुति का वचन है:—

"ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" ॥ (मुण्डक० उ० ३.२)

जो इस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।

अहंग्रह और प्रतीक उपासना दोनों में नामरूप संसार (भूत) को हटाना इष्ट होता है, बनाना नहीं। जल ब्रह्म है, स्थल ब्रह्म है, पवन ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, गंगा ब्रह्म है, इत्यादि प्रतीक उपासना के रूप-दर्शक वाक्यों में जल, स्थल, पवन आदि के साथ ब्रह्म को यहाँ जोड़ना (संकलन करना) नहीं है। जैसे यह सर्प काला है, इसमें सर्प भी रहे है और काला भी। किन्तु यहाँ तो बाध समानाधिकरण का है, जैसे किसी भ्रांति वाले को कहें-यह सर्प रस्सी है, यहाँ रस्सी काले रंग की तरह सर्प के साथ समान सत्ता वाली नहीं है, किन्तु

रस्सी ही है, सर्प है नहीं। इसी तरह सच्ची उपासना वह है कि धारारूप जल दृष्टि में न रहे, ब्रह्म चित्त में समा जाय, स्पंदरूप पवन दृष्टि से गिर जाय, ब्रह्मसत्ता मात्र ही भान हो, प्रतिमा में प्रतिमापन उड़ जाय, चैतन्य स्वरूप भगवान् की झाँकी हो। जैसे किसी प्रेम के मतवाले घायल ने प्यारे का प्रेमपत्र पढ़ा, उसकी दृष्टि तो प्यारे के स्वरूप से भर गई, अब पत्र किस को दीख पड़े। (गोपियाँ उद्धव से कहती हैं, यह पाती अब कहाँ रक्खें ? छाती से लगाती हैं तो जल जायगी, आँखों पर धरती हैं तो गल जायगी) उपासना में मग्न के लिए इन्द्रियज्ञान तो एक छेड़ जैसी रह जायगी। प्यारे ने चुटकी भरी, चुटकी वस्तुतः कोई चीज नहीं है, प्यारा ही वस्तु रूप है। इसी तरह सब इन्द्रियों का ज्ञान एक ही प्यारे की छेड़छाड़ रूप प्रतीत होगी :—

आई पवन जब ठुमक ठुमक, लाई बुलावा श्याम का !

भाई ! उपासना तो इसी का नाम है जिसमें जबान को तो क्यों हिलना है, शरीर की हड्डी और नाड़ी तक के परमाणु परमाणु हिल जाँय। यह नहीं तो, आँख मूँदो, नाक मूँदो, कान मूँदो, मुख मूँदो, गाओ चाहे चिल्लाओ तुम्हारी उपासना बस एक चित्र-रूप है, जिसमें जान नहीं। बड़ा सुन्दर चित्र सही, रवि वर्म्मा का मान लो, पर खाली तसवीर से क्या है ?

पदार्थों में इस ब्रह्मदृष्टि को दृढ़ करना और विषय-भावना का मिटाना रूपी उपासना, कुछ वैसा अध्यारोप (कल्पना) शक्ति को बढ़ाना और बरतना न जान लेना, जैसा शतरंज में काठ के टुकड़ों को बादशाह, वजीर, हाथी, घोड़ा प्यादा मान लेना होता है। जल ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, अग्नि ब्रह्म है, मन ब्रह्म है, इत्यादि उपासना के रूप

तो अवस्तु को मिटाकर वस्तुभावना जमाते हैं। यदि यह ख्याली मान लेना और कल्पना मात्र भी हो, तो यह वैसी कल्पना है, जैसे बालक गुरुजी के कहने से गुणा करने और भाग देने की रीति को मान लेता है। भाग देने और गुणा करने की यह विधि क्यों ऐसी है और क्यों नहीं, और इस रीति द्वारा उत्तर के ठीक आ जाने में कारण क्या है, यह बातें तो पीछे आयेंगी, जब बीजगणित (अलजेबरा) पढ़ेगा। परन्तु उस गुर (रीति) पर विश्वास करने से उदाहरण सब अभी ठीक निकलने लग पड़ेंगे। पर ख़बरदार! गुरुजी के बताये हुए गुर (रीति) को ही और का और समझकर मत याद करो।

प्रतिमा क्या है? जिससे मान निकाला जाय, नापा जाय, तोला जाय, (unit of measurement)। जब तोलने का बट्टा छोटा हो, तोल का मान बड़ा होता है। जैसे तोलने का बट्टा एक पाव होने पर यदि किसी चीज़ का मान चार हो, तो बट्टा एक छटांक होने पर मान सोलह होगा। अब हिन्दू धर्म के यह प्रतीक और प्रतिमा क्या थे? ईश्वर को तोलने का बट्टा। हिन्दू धर्म में अति उच्च सूर्य, चन्द्रमा रूपी प्रतीक भी हैं। इनसे उतर कर गुरु ब्राह्मण रूप हैं, गो-गरुड़ रूप भी, अश्वत्थ-वृन्दा रूप भी, कैलाश-गंगा रूप भी, और ठिगने से गोलमोल काले पत्थर को भी प्रतिमा (प्रतीक) रूप स्थापित कर दिया है। यह छोटे से छोटा प्रतीक क्या परमेश्वर को तुच्छ बनाने के लिए था? नहीं जी, प्रतीक का छोटा करना इसलिए था कि ईश्वर भाव और तत्त्वदृष्टि का समुद्र यहाँ निकले: जब उस नन्हें से पत्थर को भी ब्रह्म देखे, तो बाकी असल पदार्थ और समस्त जगत तो अवश्यमेव ब्रह्मरूप भान हुआ चाहिए। परन्तु जिसने मूर्ति पूजा इस

समझ से की, कि यह ज़रा सा पत्थर ही ब्रह्म है, वह हो गया "पत्थर का कीड़ा"।

परा पूजा

पदार्थ के आकार, नाम-रूप आदि से उठकर उसके आनन्द और सत्ता अंश में चित्त जमाना, पद या शब्द से उठ कर उसके अर्थ में जुड़ने की तरह चर्मचक्षु से दृश्यमान सूरत को भूल कर ब्रह्म में मग्न होना रूपी जो उपासना है, क्या यह किसी न किसी नियत प्रतीक द्वारा ही करना चाहिए? जब लिखने का हाथ पक गया, तो चाहे जहाँ लिख सके? ब्रह्मदर्शन की रीति आ गई, तो जहाँ दृष्टि पड़ी ब्रह्मानन्द लूटने लगे। प्रतीक उपसना तब सफल होती है जब वह हमें सर्वत्र ब्रह्म देखने के योग्य बना दे। सारा संसार मन्दिर बन जाय, हर पदार्थ राम की झाँकी कराये, और हर क्रिया पूजा हो जाय।

जेता चलूँ तेती प्रदखना, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गृह उद्यान एक सम जान्यो, भाव मिटाइयो दूजा॥

सच्ची और जीती उपासना जिनके अन्दर यौवन को प्राप्त होती है, उनकी अवस्था श्रुति (तैत्तिरीय शाखा) यूँ प्रतिपादन करती है।

यावद्म्रियते सा दीक्षा, यदश्नातितद्धविः, यत्पिबति तदस्य सोमपानं, यद्रमते तदुपसदो, यत्संचरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च, प्रवर्ग्यो, यन्मुखं तदाहवनीयो, याव्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति॥ (महानाराणोपनिषद् खण्ड २९)

जो इस प्रकार—यज्ञ पुरुष—का धैर्य धारण करता है, वही दीक्षा है, जो वह भोजन करता है, वही उसकी हवि है। जो वह पीता है,

वही उसका सोमपान है। जो क्रीड़ा करता है, वही उसका उपसद् (सेवा पूजा) है। जो उसका चलना, बैठना और खड़ा होना है, वही उसका प्रवर्ग्य है। जो उसका मुख है, वह हवन योग्य वह्नि है। जो व्याहृति है, वही उसकी आहुति है। जो इसका विज्ञान है, वही उसका हवन करना है॥

मुक्ति, शान्ति और सुख चाहो, तो भेद-भाव का मिटाना और ब्रह्मदृष्टि का जमाना ही एक मात्र साधन है।

यह दृष्टि क्यों आवश्यक है? क्योंकि वस्तुतः यही बात है :—

"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या।"

(ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है)

अगर गर्मी, भाप, बिजली आदि के कानूनों के अनुसार रेल, तार, बेलून आदि यन्त्र बनाओगे, तो चल निकलेंगे, और कानून को भुलाकर लाख यत्न करो, अँधेरी कोठरी से कहां निकल सकते हो? अब देखो, यह आध्यात्मिक कानून (अभेद भावना) तो तत्त्वविज्ञान (साइंस) के सब नियमों का नियम है, जो वेद में दिया है। इसे बर्त्ताव में लाते हुये क्योंकर सिद्धि हो सकती है? अमरीका के महात्मा इमर्सन (Emerson) ने अपने निज के प्रतिदिन की अनुभूत परीक्षा (रूहानी तजरबे) को पक्षपात रहित देख देखकर क्या सच कह दिया है "किसी वस्तु को दिल से चाहते रहना, अथवा दांत निकालकर अधीन भिखारी की तरह दूसरे की प्रीति का भूखा रहना, यह पवित्र प्रेम नहीं है। यह तो अधम नीच मोह है। केवल जब तुम मुझे छोड़ दो और खो दो, और उस उच्च भाव में उठ जाओ जहाँ न मैं हूँ न तुम, तब तो मुझे निश्चय कर तुम्हारे पास आना पड़ता है, और तुम मुझे अपने चरणों

में पाओगे। जब तुम अपनी आँखें किसी पर लगा दो, और प्रीति की इच्छा करो, तो उसका उत्तर तिरस्कार और अनादर बिना कभी और कुछ नहीं मिला, न मिलेगा, याद रक्खो"।

भाई! इसमें पन्थाई झगड़ों की क्या आवश्यकता है? हाथ कङ्कन को आरसी क्या है? अगर क्लेशरूपी मौत मंजूर नहीं, तो शान्तिपूर्वक अपने चित्त की अवस्था और उसके दुःख-सुखरूपी फल पर एकान्त में विचार करना आरम्भ कर दो, सच झूठ आप निथर ही आयगा। अगर तुममें विचार-शक्ति रोगग्रस्त नहीं है, तो खुद बखुद यह फैसला करोगे कि चित्त में त्याग अवस्था और ब्रह्मानन्द हुए ऐश्वर्य्य, सौभाग्य इस तरह हमारे पास दौड़ते आते हैं, जैसे भूखे बालक माँ के पास—

यथेह क्षुधिता बाला मातारं पर्युपासते॥ [सामवेद]

जब हमारे अन्दर सच्चा गुण और शान्ति रूपी विष्णु होगा, तो लक्ष्मी अपने पति की सेवा निमित्त, हज़ारों में, हमारे दरवाज़े पर अपने आप पड़ी रहेगी। कई मनुष्य शिकायत करते हैं कि भक्ति और धर्म करते करते भी दुःख दरिद्र उन्हें सताते हैं और अधर्मी लोग उन्नति करते जाते हैं। यह दुःखिया भूनेभाले कार्य कारण के निर्णय करने में अन्वयव्यतिरेक को नहीं वर्त रहे। इन को यह मालूम ही नहीं कि धर्म क्या है और भक्ति क्या। स्वार्थ और ईर्षा (देहाभिमान) को तो उन्होंने छोड़ा ही नहीं, जिसका छोड़ना ही धर्म को आचरण में लाना था; अब उनका यह गिला कि धर्म को वर्तते वर्तते दुःख में डूबे हैं, क्योंकर युक्त वा सत्य हो सकता है? अगर धर्म को वर्ता होता, तो यह शिकायत, जिसमें स्वार्थ और ईर्ष्या दोनों मौजूद हैं, कभी न करते। वह दान और भजन भी धर्म में शामिल नहीं हो सकते, जिनसे

अहङ्कार और अभिमान बढ़ जाँय। जहाँ पापी फलता-फूलता पाते हो, वहां सुखभोग का कारण ढूँढ़ो तो उस पुरुष का चित्त आत्माकार और एकान्त रहा था, जो तुमने देखा नहीं, और उसके पाप कर्म का परिणाम खोजो तो महा क्लेश होगा, जो अभी तुमने देखा नहीं।

तुम पर किसी ने व्यर्थ अत्याचार किया है, तो अहङ्कार-रहित होकर, पक्षपात छोड़कर तुम अपना अगला पिछला हिसाब विचारो। तुमको चाबुक केवल इसलिए लगा कि तुमने कहीं अयुक्त रजोगुण में दिल दे दिया था, आत्म-सम्मुख नहीं रहे थे, राम के क़ानून को तोड़ बैठे थे। मन के ब्रह्माकार न रहने से यह सजा मिली, अब उस अनर्थकारी वैरी से जो बदला लेने और लड़ने लगे हो, ज़रा होश में आओ कि अपनी पहली भूल को और भी चौगुना पाँचगुना करके बढ़ा रहे हो और प्रतिक्रिया से उस अपराधीरूप जगत के पदार्थ को सत्य बना रहे हो और ब्रह्म को मिथ्या।

बच्चो! याद रक्खो, ऐंठो तो सही दरद के आटे की तरह, मुक्के न खाओ और बार बार पटके न जाओगे तो कहना। प्रायः लोग औरों के कसूर पर जोर देते हैं और अपने तईं बेकसूर ठहराते हैं। हाँ प्रत्यगात्मारूप जो तुम हो बिलकुल निष्कलङ्क ही हो। पर अपने तईं शुद्ध आत्मदेव ठाने भी रहो, चुपड़ी और दो दो क्योंकर बनें? अपने आपको शरीर मन बुद्धि से तादात्म्य करना, और बन कर दिखाना निष्पाप, यही तो घोर पाप है, बाकी सब पापों की जड़। अब देखो जो कठोर क़ानून तुमको सत्य स्वरूप आत्मा से विमुख होने पर रुलाए बिना कभी नहीं छोड़ता, वह ईश्वर उस अत्याचारी तुम्हारे वैरी की बारी क्या मर गया है? कोई उस व्यभिचारी को आँखों में नोन

नहीं टाल सकता. पस, तुम कौन हो ईश्वर के क़ानून को अपने हाथ में लेनेवाले ? तुम को पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू ! बदला लेने का ख़याल विश्वासशून्य नास्तिकपन है।

ओ प्यारे, मेरे अपना आप, द्वेषातुर मूर्ख ! जितना औरों को चने चबवाये चाहता है, उतना अपने तई ब्रह्मध्यान की खोड खोर खिला। वैरी का वैरीपन एकदम उड़ न जाय तो सही। ब्रह्म है और ब्रह्म को भूल जाना ही दुःख रूप झमेला है। जो तुम्हारे अन्दर है, वही सबके अन्दर है।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ॥ (कठ० उप० १, ४, १०)

जो यहाँ है वही वहाँ है, और जो वहाँ है वही फिर यहाँ है।

जब तुम अन्दरवाले से बिगड़ते हो, तो जगत तुमसे बिगड़ता है ; जब तुम अन्दर के अन्तर्यामी रूप बन बैठे, तो जगत रूपी पुतलीघर में फ़साद फिर कैसा ? किस काठ के टुकड़े से न भी हो सकती है ?

"यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो, यं मनो न वेद, यस्य मनः शरीरं, यो मनोऽन्तरो यमयति, एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः" ।
(बृह० उप० ३, ७, २०)

जो मन में रह कर मन से अलग है, जिस को मन नहीं जानता, जिसका मन शरीर है, जो मन के भीतर रह कर मन को नियम में रखता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।

जब तुम दिल के चक्कर छोड़ कर सीधे हो जाओ, तो तुम्हारे भूत, भविष्य, वर्त्तमान, तीनों काल उसी दम सीधे हो जायँगे।

प्यारे ! जैसे कोई मनुष्य मोटा ताजा बग्गी में जा रहा हो, तो तुम जानते हो कि उसकी मोटाई फिटन में के गद्दे तकियों से नहीं आई, उसकी पुष्टि का कारण हिन्हिनाती हुई सवारी नहीं है, बल्कि अन्न को पचाने से शरीर बढ़ा व फैला है। इसी

तरह जहाँ कहीं ऐश्वर्य और सौभाग्य देखते हो, उसका कारण किसी की चालाकी, फन्द-फरेब कभी नहीं हो सकते। इसने दिलाकर पूछ देखो। जिस हद तक चालाकी फन्द-फरेब बर्ते गये, उस हद तक जरूर हानि (नाकामयाबी) हुई होगी। आनन्द, सुख का कारण और कुछ नहीं था। सिवाय ज्ञातत: अथवा अज्ञातत: चित्त में ब्रह्मभाव समाने के। यह और बात तुमने उसको नहीं देखा तो क्या? और वह खुद भी इस बात को भूल गया है तो क्या? (बच्चे कई दफ़ा रात को दूध पीते हैं और दिन को भूल जाते हैं), पर भाई! तेल तो तिलों ही से आता है। सुख, आनन्द, इकबाल कभी नहीं, कभी नहीं आ सकता बग़ैर आत्माकारवृत्ति रहने के।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

(श्वेता० उप० ६, २०)

जब लोग चर्म की तरह आकाश को लपेट सकेंगे, तब देव को जाने बिना दुःख का अन्त हो सकेगा।

दृष्टान्त, प्रमाण, दलील व अनुमान से तो यह सिद्ध है ही पर मैं इस समय युक्ति, उक्ति आदि को अपील नहीं करता मैं तो बहुत नेड़े (समीप) का पता देता हूँ। वह तुम हो और यह तुम्हारी दुनिया है। देख लो, खूब आँखें खोल लो। जब तुम्हारे चित्त में दुनिया के सम्बन्धों की तुलना ईश्वर-भाव से अधिक हो जाती है, जब 'मैं, मेरा' भाव चित्त में त्याग और शान्ति को नीचे दबाता है, तो जिस दर्जे तक "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" रूपी सत्य की आचरण से उपेक्षा करते हो, उसी दर्जे तक दुःख, खेद, क्लेश तुम्हें मिलता है, और अन्ध कूप में गिरते हो। वनस्पति (B.....) और रसायन विद्या

(Chemistry) की तरह निज के तजरुबा और मुशाहिदा अर्थात परीक्षा और विचार (observation and experiment) से यह सिद्धान्त सिद्ध है।

जगत् में रोग एक ही है और इलाज (औषध) भी एक ही। चित्त से अथवा क्रिया से ब्रह्म को मिथ्या और जगत् को सत्य जानना। एक यही विपरीत वृत्ति कभी किसी दुःख में प्रकट होती है, कभी किसी में। और हर विपत्ति की औषधि शरीर आदि को "हैं नहीं" समझ कर ब्रह्माग्नि में ज्वाला रूप हो जाना है। लोग शायद डरते हैं कि दुनिया की चीजों से किया जाय तो प्रेम का जवाब भी पाते हैं, परन्तु परमेश्वर से प्रम तो हवा को पकड़ने जैसा है, कुछ हाथ नहीं आता। यह धोखे का ख्याल है, परमेश्वर के इश्क में अगर हमारी छाती जरा धड़के, तो उसकी एकदम बराबर धड़कती है, और हमें जवाब मिलता है, बल्कि दुनिया के प्यारों की तरफ से मुहब्बत का जवाब तब ही मिलता है, जब हम उनकी तरफ से निराश होकर ईश्वरभाव ही की ओर झुकते हैं।

किसी ने कहा—लोग तुम्हें यह कहते हैं, कोई बोला—लोग तुम्हें यह कहते हैं; कहीं हाकिम बिगड़ गया, कहीं मुकद्दमा आ पड़ा, कहीं रोग आ खड़ा हुआ। ओ भोले महेश! तू इन बातों से अपने नक्शे में व्यंग मत पड़ने दे, भरें में मत आ, तू एक न मान, ब्रह्म बिना दृश्य कभी हुआ ही नहीं। चित्त में त्याग और ब्रह्मानन्द को भर तो देख, जब चलायें आंख खोलते खोलते सात समुद्रों पार न बह जायें, तो मुझको समुद्र में डुबो देना।

एक बालक को देखा, दूसरे बालक को धमका रहा था, "आज पिता से तू ऐसा पिटेगा, ऐसा पिटेगा, कि सारी

उमर याद पड़ा करे !" दूसरे बालक ने शांति से उत्तर दिया "अगर वह मुझे मारेंगे तो भले ही को मारेंगे न, तेरे हाथ क्या लगेगा ?" इस बालक के बराबर विश्वास तो हम लोगों में होना चाहिए, भयंकर भयानक भावि की भिनक पाकर बगुले की तरह गरदन उठाकर, घबराकर, "क्या ? क्या ?" क्यों करने लगे ? आनन्द से बैठ मेरे यार ! वहाँ कोई और नहीं है, तेरा ही परम पिता, बल्कि आत्मदेव है, अगर मारेगा भी तो भले के लिए। और अगर तुम उसकी मर्ज़ी पर चलना शुरू कर दो, तो वह पागल थोड़ा है कि यूंही पड़ा पीटे !

एकाग्रता में विघ्न

अपने तईं पूरा पूरा और सारे का सारा परमात्मा के हवाले कर देने का मज़ा तब तक तो आ नहीं सकता, जब तक संसार के पदार्थों में कारणत्व सत्ता भान होती रहेगी, अथवा जब तक ईश्वर हर बात का एकमात्र कारण प्रतीत न होने लगेगा। अरबी, फारसी, उर्दू में कारण को "सबब" कहते हैं, और अरबी में सबब का पहला अर्थ है "डोर-रस्सा"। रूम देश का स्वामी ज्वाल (जो उन लोगों की भाषा में 'मौलाना जलाल' इस नाम से प्रसिद्ध है) लिखता है, "यह कारणकार्यभाव रूपी रस्सा जो इस जगत्-कूप में सब घटों के गले में बँधा पाते हो, वह क्यों फिरता है ? इस बेचारा रज्जु ने तो क्या फिरना था, कूप के सिर पर देव चर्खा घुमा रहा है, पर हमें रस्सा ही सब घटियन्त्र को चलाता भान होता है, "कारणं कारणानां' तो देव ही है।"

विघ्न १. मिथ्या कारण-सत्ता में विश्वास।

न यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्यांछब्दांछक्नुयाद् ग्रह-

णाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥
स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय
शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ स यथा
वीणायै वाद्यमानायै बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय वीणायै तु
ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

(बृह० उप० ४, ५, ८–१०)

(जैसे नगारा वा धौंसा जब पीटा जाता है तो उसके बाह्य शब्द पकड़े नहीं जा सकते, पर नगारे को अथवा नगारे के पीटनेवाले को पकड़ लेने से नगारे के शब्द पकड़े जाते हैं। जैसे शंख जब पूरा जाता है तो उसके बाहर के शब्द नहीं पकड़े जा सकते। पर शंख व शंख बजानेवाले को पकड़ने से शंख के शब्द पकड़े जाते हैं और जैसे वीणा जब बजाई जा रही है, तो वीणा के बाह्य शब्द पकड़े नहीं जा सकते, पर वीणा अथवा वीणा बजानेवाले को पकड़ने से वीणा के शब्द पकड़े जाते हैं।)

जैसे ढोल, मृदंग, शङ्ख, वीणा, हारमोनियम आदि की आवाज़ सब अपने आप ही पकड़े जाते हैं, जब हम इन बाजों वा यन्त्रों को अथवा इनके बजाने वालों को काबू में करते हैं। इसी प्रकार संसार की 'कार्यकारणशक्ति' एकदम हमारे अधीन हो जायगी, जब हम एक परमात्मदेव का पक्की तरह पकड़ लेंगे। किसी बड़े आदमी की सिफ़ारिश, विद्या, बल, धन-माल, मकान आदि को जो अपनी आशापूर्ण में कारण और हेतु ठान बैठते हो, और आत्मदृष्टि का आश्रय नहीं लेते, धोखे में गिरते हो, दुःख पाओगे।

कहते हैं, कृष्ण जब गोपिकाओं का दूध, माखन आदि खाता था, तो कुछ दधि आदि घर में बँधे हुए बछड़ों की थोथनी पर लगा देता था। घरवाले लोग अपने ही बछड़ों को चोर समझ कर इन गरीबों को बड़े मारते पीटते और अपना ही

नुकसान करते थे। प्यारे! कारण तो हर बात का एकमात्र भगवान् है, बाकी कारण तो केवल चिट्ठी थोथनीवाले बेचारे बछड़े हैं। कंगले दीवालियों के नाम हजारीलाल, लखपतराय, करोड़ीमल आदि रक्खे हुए हैं। क्यों चक्कर में मारे मारे फिरते हो? ऊपर के सांसारिक मिथ्या लिंग, हेतु, आदि पर मत भूलो, यह असली कारण नहीं। जब तक लड़की विवाही नहीं जाती, तो गुड़ियों से जी बहलाती है। कारणों का कारण रूप परब्रह्म जब मिल सकता है, तो मिथ्या कारणों से जी बहलावा क्यों करना?

भानमती का तमाशा हुआ, पुतली नाचती है। "एक ने दूसरी को बुलाया, इसलिये वह आ गई। एक ने दूसरी को पीटा, इसलिये वह मर गई" इस प्रकार के कार्य्यकारण-भाव पर प्रायः मनुष्य भूल रहे हैं, असली कारण तो एक पुतलीगर (अन्तर्यामी सूत्रधारी) है।

गीत या बाँसुरी सुनने लगे, एक स्वर के बाद दूसरा स्वर आया, एक शब्द दूसरे शब्द को अवश्य लाया, इन शब्दों और स्वरों का आपस में आवश्यक लगाव, इस प्रकार के कार्यकारण भाव पर लोग भूल बैठते हैं, असली कारण तो गानेवाला (वंशीधर) है।

एक ऊँचा मकान था, "शिखर की मंजिल का आश्रय क्या है, उससे निचली मंजिल, और उसका आश्रय उससे नीचे की मंजिल, फर्श की मंजिल यानी सबका आश्रय और कारण।" इस प्रकार के कार्यकारण सम्बन्ध पर लोग भूल बैठते हैं। असली सजीवित कारण तो इन सब मंजिलों का मकान बनानेवाला (कर्त्ता, हर्त्ता) है।

संसार के कारणों को आशा की खोज में तकना तो जारी

समुद्र में डूबते को तिनके का सहारा है। जब गोलचन्द्र (कृष्ण) को वहाँ सुदर्शन तो जुड़ा नहीं, रथ का चक्र उठा कर ही अपनी प्रतिज्ञा तोड़ ली, तो (भीष्म) बुड्ढे को भी यह लड़कपन देख बड़ी हँसी आई। अब फिर वही काम न होने पाये। यह चर्मचक्षु से नज़र आनेवाले कारण, आश्रय, सहारे, इनको तकना तो अनुचित रथ के चक्र को उठाना है। इनसे क्या बनेगा? तुम अपने असली स्वरूप को तो याद करो, आँखें खोलो, किस चक्कर में पड़े हो? किस झगड़े में अड़े हो? किस कलकल में फँसे हो? तुम तो वही हो, वही। ज़रा देखो अपने असली सुदर्शन की तरफ़, तुम्हारे भय से सूर्य काँपता है, तुम्हारे भय से पवन चलती है, तुम्हारे खौफ से समुद्र उछलता है, तुम्हारे चाबुक से मौत मारी मारी फिरती है।

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति॥

(तैत्ति० उप० २,८, १)

(इस ब्रह्म के भय से वायु चलती है, इसके भय से सूर्य उदय होता है, और इसी के भय से अग्नि, इन्द्र और पाँचवाँ मृत्यु भागता फिरता है।)

यह डर से मेहर* आ चमका, अहाहाहा, अहाहाहा।
उधर मह† बीम‡ से लपका, अहाहाहा, अहाहाहा॥
हवा अठखेलियाँ करती है, मेरे इक इशारे से।
है कोड़ा मौत पर मेरा, अहाहाहा अहाहाहा॥

अरे प्यारे! विषयों के वश में रहना तो पराधीनता में मरना है, इस बेबसी का जीना तो शरीर को क़बर बनाकर मुर्दे

---

* सूर्य। † चन्द्र। ‡ डर।

की तरह सड़ना है। "निर्ममो निरहंकारः" हुए आत्म-ज्योति शरीर में से इस प्रकार फैलती है, जैसे फानूस में से प्रकाश। जिस कार्य में ऊपर के लक्षण देखकर अनुमान के आश्रय आशा की पाश में दिल फँसा दिया जाय, वह कार्य कभी नहीं होगा। जिनको अनुमान और लक्षण मान रक्खा है, मनुष्य को मिथ्या संसार में इस प्रकार फँसाते हैं, जैसे मछली को मांस की बोटी जाल में (कुण्डी में)। जब ऊपरी कारणों को दिल में न जमाकर, स्वार्थांश को त्यागकर, कोई भी कार्य इस भावना से किया जाय, "हे राम! यह तुम्हारा ही काम है, तुम्हारा है इसलिए मैं अपना समझता हूँ, जो तुम्हारी मर्जी सो मेरी मर्जी, कार्य के होने न होने में मुझे हानि नहीं, लाभ नहीं, मेरा आनन्द तो केवल तुम्हारे साथ अभेद रहने में है, काम को यदि सँवार दो तो वाह वाह! बिगाड़ दो तो वाह वाह!" जब सच्चे दिल से यह भावना और यह दृष्टि हो तो क्या दुनिया और दुनिया के कानूनों की शामत आई है कि चाकरों की तरह तत्काल सब काम न करते जायँ? भला राम के काम में भी अटकाव हो सकता है? भगवद्गीता के मध्य में जो श्लोक कि गीता को आधा इधर और आधा उधर गुरुत्वकेन्द्र (centre of gravity) की तरह तौल देता है, वह है:—

अनन्याश्चिन्तयंतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गी० ९. २२)

(अनन्य चित्त से चिन्तन करते हुए जो लोग मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य युक्त पुरुषों का योगक्षेम मैं अपने ऊपर लेता हूँ।)

भगवान् का यह तमस्सुक (इकरारनामा) तब भी झूठ नहीं होगा जब अग्नि की ज्वाला नीचे को बहने लगे, और सूर्य पश्चिम से उदय होना प्रारम्भ कर दे और पूर्व में अस्त।

यार! मनुष्य जन्म पाकर भी हैरान और शोकातुर रहना बड़ी शर्म (लज्जा) की बात है। शोक चिन्ता में वे डूबें जिनके मा-बाप मर जाते हैं, तुम्हारा राम तो सदा जीता है, क्या ग़म? जरा तमाशा तो देखो, छोड़ दो शरीर की चिन्ता को, मत रक्खो किसी की आस, परे फेंको वासना-कामना, एक आत्म-दृष्टि को दृढ़ रक्खो, तुम्हारी खातिर सब के सब देवता लोहे के चने भी चाब लेंगे।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥

(शु० यजु० अ० ३१ मं० २१)

(देवतागण प्रकाशस्वरूप ब्रह्मज्योति आदित्य को प्रकट करते हुए पहिले यह बोले कि हे आदित्य! जो ब्राह्मण आपको इस प्रकार प्रकट-जानेगा, उसके देवता वश में होंगे। अर्थात् ब्रह्म की यथायोग्य उपासना से हृदय में प्रकाश प्रकट होता है। ब्रह्मज्योति प्रकट होने से उसका ब्रह्म में अधिष्ठान हो जाता है, तब सब देवता उसके वशीभूत हो जाते हैं।)

सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति॥ (बृ० उप० ४, १, ३)
(सब पदार्थ उसकी ओर झुकते हैं।)
सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति॥ (तैत्ति० उप० १, ५, ३)
(सारे देवता इसके लिए बलि लाते हैं।)
न पश्योमृत्युं पश्यति, न रोगं, नोत दुःखतां।
सर्वं ह पश्यः पश्यति, सर्वमाप्नोति सर्वशः इति॥

(छां० उप० ७, २६, २)

(जो यह देखता है कि "यह सब कुछ आत्मा ही है" वह न मृत्यु को देखता है, न रोग को और न दुःख ही को। ऐसा देखने वाला सब वस्तुओं को देखता है और सर्व प्रकार से सब वस्तुओं को प्राप्त होता है।)

कोई सन्दिग्ध शब्दों में तो वेद ने कहा ही नहीं, "जब सर्वात्म दृष्टि हुई तब रोग, दुःख, और मौत पास नहीं फड़क सकते, आत्मा को जाने क्या नहीं जाना जाता, और हर प्रकार से हर पदार्थ मिल जाता है।

आनन्द धाम को चित्त चला तो वैरी विरोधी का खयाल डाकू रूप होकर चित्त को ले उड़ा। यूरप में एक दिन एक

विघ्न २ ; द्वेष-दृष्टि।

तत्वविज्ञान का लायक डॉक्टर (आचार्य) अपने पास आनेवालों की कुछ निन्दा सी करने लगा। उससे पूछा कि "आप शिकायत करते हो ?" तो बोला "नहीं, मैं उनके चित्त की अध्यात्म-दशा पर विचार करता हूँ" (I study the psychology of their minds)। दुनिया में हम लोग बराबर यही तो करते हैं। द्वेष दृष्टि (और दुष्ट भाव) को कोई श्रेष्ठ सा नाम देकर आँखों पर परदा डाल लिया, और इस सर्पनी को बराबर छाती से लगाये फिरे। फिर जब कहा गया "प्यारे डाक्टर ! सम्बन्ध-वालों की अध्यात्म-दशा अकेली विचार के योग्य नहीं होती। अपनी आभ्यन्तर दशा भी उनके साथ साथ विचारणीय है। साथी जो बिगड़े चित्तवाले मिले हैं, तो क्या आज कल आप की आभ्यन्तर अवस्था बिलकुल दूषण-रहित थी ?" डाक्टर आदमी था सच्चा, कुछ देर चुप रहकर विचार करके बोला, 'स्वामिन् ! कहते तो बिलकुल सच हो'। वास्तव में जैसा मेरा चित्त होता है, वैसे चित्त और स्वभाव मेरे पास आक-र्षित हो जाते हैं, लोगों की अवस्था पर भला बुरा चिन्तन करते रहने से कभी झगड़ा निपटना भी नहीं, उन लोगों को क्या पकड़ूँ, सब मनों का मन मैं हूँ, सब दिलों का दिल मैं हूँ। अन्दर से ऐसी एकता है कि अपने तई शुद्ध रक्खे ही सब

शुद्ध ही शुद्ध पाता हूँ। समीप का इलाज (अपने तईं ब्रह्ममय कर देना) तो हम करते नहीं, दूर के बन्दोबस्त (औरों के सुधार) को दौड़ते हैं। न यह होता है, न वह। ईश्वर-दर्शन तो तब मिलेगा जब सांसारिक दृष्टि से प्रत्यमान वैरी विरोधी निन्दक लोगों को क्षमा करते हम इतनी देर भी न लगायें जितना श्री गंगाजी तिनकों को बहा ले जाने में लगाती हैं या जितनी आलोक किरणें अन्धकार के उड़ाने में लगाती हैं।

जब तक सर्व पदार्थों में *समधी नहीं होती, तब तक समाधि कैसी ? विषम दृष्टि रहते, योग समाधि और ध्यान तो कहाँ, धारणा भी होनी असम्भव है। सम दृष्टि तब होगी जब लोगों में भलाई बुराई की भावना उठ जाय। और यह क्योंकर उठे ? जब लोगों में भेद-भावना उठ जाय, और पुरुषों को ब्रह्म से भिन्न मान कर जो अच्छा बुरा कल्पना कर रक्खा है, न करें। समुद्र में जैसे तरंग होती हैं, कोई छोटी कोई बड़ी, कोई ऊँची कोई नीची, कोई तिर्छी कोई सूधी, उनकी सत्ता समुद्र से अलग नहीं मानी जाती, उनका जीवन भिन्न नहीं जाना जाता। इसी तरह अच्छे बुरे आदमी, और अमीर ग़रीब लोग तो तरंगें हैं, जिनमें एक ही ब्रह्म-समुद्र ढाढ़ें मार रहा है, अहाहाहा ! अच्छे बुरे पुरुषों में जब हमारी जीव-दृष्टि उठ जाय और उनको ब्रह्मरूपी समुद्र की लहरें जान लें तो राग-द्वेष की अग्नि बुझ जायगी और छाती में ठंढक पड़ जायगी। जो लहर ऊँची चढ़ गई है, वह अवश्य नीचे गिरनी है, इसी तरह जिस पुरुष में खोटापन समा गया है, उसे अवश्य दुःख पाना ही है। परन्तु लहरों के ऊँच और नीच भाव को प्राप्त

---

*समान बुद्धि अर्थात् सम दृष्टि।

होते रहने पर भी समुद्र की (पृष्ठ) को क्षितिज धरातल (horizontal) ही माना है। इसी तरह बीज रूप लोगों के कर्म और कर्म फल को प्राप्त होते रहने पर भी ब्रह्मरूपी समुद्र की समता में फर्क नहीं पड़ता। लहरों का तमाशा भी क्या सुखदायी और आनन्दवर्द्धक होता है, पर हाँ जो पुरुष उनसे भीग जाय या डूबने लगे, उसके लिए तो उपद्रव-रूप है। समुद्र-दृष्टि होने से सम धी और समाधि होगी।

उपासना की जान समर्पण और आत्मदान है, यदि यह नहीं तो उपासना निष्फल और प्राण रहित है। भाई! सच

बिघ्न ३; स्वार्थ, ८ पद।

पूछो तो हर कोई लेने का यार है। जब तक तुम अपनी खुदी और अहङ्कार को परमेश्वर के हवाले न करोगे, तब तक तुम्हारे पास बैठना तो कैसा, तुमसे कोसों भागता फिरेगा, जैसे कृष्ण भगवान् कालयवन से। उस आँखों वाले प्रज्वलित हृदय सूरदास ने बिलबिलाते बच्चे की तरह क्या ज़ोर से सच कहा है।

किन तेरो गोविन्द नाम धर्‍यो!

लेन देन के तुम हितकारी मो से कछु न सर्‍यो॥
विप्र सुदामा कियो अजाची तंदुल भेंट धर्‍यो॥
द्रुपदसुता की तुम पति राखी अम्बर दान कर्‍यो॥
गज के फन्द छुड़ाये आकर पुष्प जो हाथ पर्‍यो॥
सूर की बिरियाँ निठुर ह्वै बैठे कानन मूँद धर्‍यो॥

यदि चाहो, परीक्षा तो करें, भजन (उपासना) से फल मिलता है कि नहीं, तो प्यारे! याद रहे 'परीक्षा का भजन' असंगत है और असंभव है, क्योंकि निष्कपट भजन तो होगा वह, जिसमें फल और फल की इच्छा वाले अपने आपको इस तरह परमेश्वर के भेंट कर दें जैसे अग्नि में आहुति।

यह विनती रघुवीर गुसांई।
और आश विश्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई।
चाहौं न सुगति सुमति सम्पति कछु ऋद्धि सिद्धि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़े अनुदिन अधिकाई।

यदि कोई कहे, आहुति हो जाने में क्या स्वाद रहा ? तो ऐसा पूछनेवाले को स्वाद (आनन्द) का स्वरूप ही विदित नहीं। खुद (अहभाव) के लीन हो जाने का ही नाम है स्वाद, आनन्द। बच्चे ने जब अपना नन्हा सा तन, और भोलो भाला मन, माता की गोद में डाल दिया, तो सारे जहान में उसके लिए कौन सा आराम शेप रहा और कौन सी चिन्ता बाकी रही। आँधी हो, वर्षा हो, भूकम्प हो, कुछ हो, उसका बाल बाँका नहीं होगा, कैसा निर्भय है, क्या मीठी नींद सोता है और सलोनी जाग्रत उठता है।

विघ्न ४ ; प्रकृति नियम-भङ्ग।

जब तक तुम्हारी शारीरिक क्रिया उपासना रूप न हो, तुम्हारा ऊपर से उपासना करना व्यर्थ दिखलावा है। निष्फल मन परचावा है। क्रिया-रूप उपासना का यह अर्थ है कि खाने, पीने, सोने, व्यायाम आदि में जो प्रकृति के नियम हैं उनको रञ्चक मात्र भी न तोड़ा जाय। विषय-विकार, स्वादों में पड़ना आचरण से ईश्वर की आज्ञा भङ्ग करना है, जिसका दण्ड रोग, व्यथा आदि अवश्य मिलना है। और जब पोड़ा रूपी कारागार मे बंत पड रहे हों, उपासना कहाँ हो सकती है। जिस पुरुष का स्वभाव वैसी ही क्रिया आदि को तरफ ले जाय, जैसा ईश्वरीय नियम चाहते हैं ; जिस पुरुष की इच्छा वही उठे जो मानों ईश्वर की इच्छा है ; जिसकी आदत, (nature) प्रकृति की

आदत हो, वह आदरण से 'शिवोऽहम्' गा रहा है, उसे दुःख कहाँ से लग सकता है ?

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" (मुण्डं उ० ३, ४)

(बल-हीन पुरुष से आत्मा प्राप्त नहीं होता)

मुण्डक उपनिषद् में यहाँ बल से तात्पर्य शरीर की आरोग्यता है, और अध्यात्मबल भी है, जिसको अध्यवसाय भी कहते हैं। गीता की *"प्रज्ञा प्रतिष्ठिता" भी बल रूप है।

निद्रा क्यों आवश्यक है:—प्रति दिन काम काज करते मनुष्य प्रायः संसार और शरीर आदि को सत्य मानने लगते हैं। परन्तु काम काज के लिए शक्ति, बल तो आनन्द-स्वरूप आत्मदेव से ही आता है, जिसकी सत्ता के आगे संसार की नाम रूप सत्ता वा भेद भावना रह नहीं सकती। जगत् के धन्धों में फँसे हुए को नित्य प्रति निद्रा घेर कर पृथ्वी पर फेंक कर यह सन्था पढ़ाती है कि यह जगत् है नहीं, आत्मा ही आत्मा है, क्योंकि निद्रा में संसार मिथ्या हो जाता है और अज्ञाततः एक आत्मा शेष रह जाता है।

पोल निकाल्यो जगत का, सुषुप्त्यवस्था मांहि।
नाम रूप संसार की, जहाँ गन्ध भी नांहि॥

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत, एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते।

[छांदो० उप० ६, ८, २]

[जैसे (शिकारी के) तागे से दृढ़ बँधा हुआ पक्षी दिशा दिशा में उधर और कहीं आश्रय न पाकर उसी जगह का आश्रय लेता है।

* देखो गीता अ० २ श्लो० ५७, ५८, ६१, ६८।

जहाँ वह बँधा हुआ है ; ठीक इसी प्रकार हे सौम्य ! यह मन दिशा दिशा में घूम कर और कहीं आश्रय न पाकर प्राण का ही सहारा लेता है, क्योंकि यह मन हे सौम्य ! प्राण से बँधा हुआ है (अथवा प्राण के आश्रय है ।)]

सुषुप्ति द्वारा अज्ञाततः परम तत्त्व में लीन हुए इस क़द्र शक्ति-बल आ जाता है, तो उपासना-ध्यान आदि द्वारा ज्ञाततः परम तत्त्व में लीन हुए शक्ति-बल, आनन्द क्यों न बढ़ेंगे ? जब देखो कि चिन्ता, क्रोध, काम, (तमोगुण) घेरने लगे हैं, तो चुपके उठकर जल के पास चले जाओ, आचमन करो, हाथ-मुँह धोओ, या स्नान ही कर लो, अवश्य शान्ति आ जायगी और हरिध्यान रूपी क्षीरसागर में डुबकी लगाओ, क्रोध के धुएँ और भाप को ज्ञान-अग्नि में बदल दो ।

उपासना में आवश्यक उदारता

उपासना की चेटक यज्ञ, कर्म और दान से लगनी आरम्भ होती है । जब कुछ चीज़ यज्ञ में या और समय पर दी गई, तो चित्त में ठंडक और शान्ति व्यापी, यह रस फिर लेने को जी करने लगा । बाहर के स्थूल पदार्थ कभी कभी देते दिलाते, अति कठिन और सूक्ष्म दान अर्थात् चित्तवृत्ति का हरि चरणों में खोया जाना भी शनैःशनैः आ जाता है । उपासना, ध्यान का रङ्ग जमने लगता है । अब यहाँ पर इतना विस्मयजनक है कि जिसे एक दृष्टि से हमने खो देना (दान) कहा है, वह दूसरी ओर से देखें तो लूट लेना है । भक्ति (उपासना) चित्त की उस दर्जे की उदारता का नाम है, जिसमें अपने आप तक को उछाल कर हरिनाम पर वार कर फेंक दिया जाय । उपासना-आनन्द को तङ्ग दिलवाला कभी नहीं पा सकता, जिसका

दिल बादशाह नहीं, वह क्या जाने भक्ति रस को! और बादशाह वह है जिसका अपने दिल के भीतर में एक लँगोटी (कोपीन) के साथ भी दावा न हो।

धन चुराया गया, रोता क्यों है? क्या चोर ले गये? रो इस समझ पर। प्यारे! और कोई नहीं है लेने लेजाने वाला, एकही एक, शुक्र की आँख, यार प्यारा अनेक बहानों से तेरा दिल लिया चाहता है। गोपिकाओं के इससे बढ़ कर और क्या सुकर्म होंगे कि कृष्ण मक्खन चुरायें। धन्य हैं वह जिनका सब कुछ चुराया जाय, मन और चित्त तक भी बाकी न रहे।

ककुभाय स्तेनानां पतते नमः,
नमो निचेरवे परिचराय॥
तस्कराणां पतये नमः॥ (शु० यजु० मं० १६, २०)

(प्रसिद्ध चोरों के पति को नमस्कार, गुप्तचरों के पालक को नमस्कार। प्रकट में चोरी करने वाले—डाकुओं व लुटेरों—के पति को नमस्कार।)

ऋग्वेद और यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में दिखाया है कि जब ऋषि, देवता लोगों ने विराट् पुरुष की हवि दे दी, तो उनके सब काम स्वयं ही सिद्ध होने लग पड़े। यज्ञ से जगत की उत्पत्ति हुई। बृहदारण्यकोपनिषद् के आदि में समस्त संसार रूपी अश्व का मेध किस मनोहर रीति से वर्णन किया है। वाह, वा! जब तक नामरूप समस्त संसार, और विराट् रूप समस्त जगत् सम्यक् प्रकार से दान न कर दिया जाय, और यज्ञाग्नि में आहुति न कर दिया जाय, तब तक अमृत चखने का मुँह कहाँ?

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" रूपी ज्ञान की अग्नि में जगत् के

पदार्थ और उनकी कामना का विपद्कार (पूर्ण नाश) हो जाय, तो साम्राज्य (स्वराज्य) की प्राप्ति में देर ही क्या है ?

राजा बलि ने जल का करवा हाथ में लेकर तीनों लोक भगवान् को दान कर दिये, तुम से एक असुर के बराबर भी नहीं सरती। अपना सिर रूपी चमस व खप्पर को हथेली पर ले सारे संसार में सत्तादृष्टि करदो ब्रह्म के हवाले। बला टली, बोझ हटा, और ईश्वर को भी ईश्वरत्व देने वाले तुम हो, सूर्य चंद्रमा भी तुम्हारे भिखारी हैं।

लोग कहते हैं जी भजन में मन नहीं ठहरता, एकाग्रता नहीं होती। एकाग्रता भला हो कैसे ? कृपणता के कारण बन्दर की तरह मुट्ठी से पदार्थों को छोड़ते नहीं और मुट्ठी में लिया चाहते हैं राम को। आखिर ऐसा अनजान (भोला) तो वह भी नहीं, कि अपने आप ही हत्थे चढ़ जाय।

जहाँ काम तहाँ राम नहि, जहाँ राम नहिं काम।

राम तो उसको मिलता है जो हनुमान् की तरह हीरों, जवाहिरों को फोड़ कर फेंक दे, "यदि उनमें राम नहीं हैं तो इस इनाम को कहां धरूँ ? क्या करूँ ?"

कुन्दकुञ्जममुं पश्य सरसिरुह लोचने।
अमुना कुन्द कुञ्जेन सखि मे किं प्रयोजनम्॥ (सभा तरङ्ग)

'मु' रहित 'कुन्द' कुञ्ज को मैं क्या देखूं, अर्थात् मुकुन्द नहीं तो कुन्द कुञ्ज को आग लगाऊँ ?

भजन करते समय निर्लज्ज चित्त में मकान के, खानपान के, अपने मान, अपनी जान के ध्यान आजाते हैं। मूर्ख को इतनी समझ नहीं कि ये चीजें चिंतन योग्य नहीं, चिन्तन योग्य तो एक राम है।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चदपि चिन्तयेत्॥ [गीता० ६, २५]

(मनको आत्मा में स्थिर करके कुछ भी चिन्तन न करे)

प्रभु का डेरा हमारे चित्त में लगे, तो फिर कौन सी आशा है जो अपने आप पूरी न पड़ी होगी ? जब तक पदार्थ में सत्ता-दृष्टि है, या उसमें चित्त लगाये हुए हो, सिर पटक मारो, वह पदार्थ कभी नहीं मिलेगा, या सुखदायी होगा। जब यत्नतः अथवा स्वाभाविक उस पदार्थ से दिल उठता है, अर्थात् आत्मारूपी अग्निकुण्ड मे वह चीज पड़ती है, मन में यज्ञ हो जाता है, तो स्वयम् इष्ट पदार्थ हाजिर हो जाता है। हिमालय पवन की ठोकर से गेंद की तरह शायद कभी उछलने भी लग पड़े, परन्तु यह कानून बाल के बराबर कभी इतर नहीं हो सकता।

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद,
क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद,
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद,
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद,
वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान्वेद,
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतान वेद,
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद।
इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः, इमे वेदाः,
इमानि सर्वाणि भूतानि, इदं सर्वं यदयमात्मा।

[बृह० उप० २, ४, ६]

(ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से इतर ब्राह्मणत्व जानता है। क्षत्रियत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र क्षत्रियत्व को जानता है। लोक उसे परे हटा देते हैं, जो आत्मा से इतर लोकों को जानता है। देवता उसको परे हटा देते हैं जो आत्मा से अन्यत्र देवताओं को जानता है। वेद उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से

अन्यत्र वेदों को जानता है। प्राणी लोग उसे परे हटा देते अर्थात् दुत्कार देते हैं जो प्राणियों को आत्मा से अन्यत्र जानता है। प्रत्येक वस्तु उसे परे हटा देती है जो प्रत्येक वस्तु को आत्मा से अन्यत्र जानता है। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये सब प्राणी, यह सब वस्तु वही है, जो कि यह आत्मा है।)

बात बात में राम दिखाता है कि "मैं ही हूँ, जगत् है नहीं"। अगर जगत् की चीजें हैं, तो केवल मेरा कटाक्ष मात्र हैं।

भाई! समाधि और मन की एकाग्रता तो तब होगी, जब तुम्हारी तरफ से माल, धन, बंगले, मकान पर मानो हल फिर जाय; स्त्री, पुत्र, बेटी, मित्र पर सुहागा चल जाय, सब साफ़ हो जाय; राम ही राम का तूफ़ान (अब्धि) आ जाय, कोठे दालान बहा ले जाय।

अत्र पिताऽपिता भवति, माताऽमाता, लोका अलोकाः देवा अदेवाः, वेदा अवेदाः। अत्रस्तेनोऽस्तेनो भवति, भ्रूणहाऽभ्रूणहा, चाण्डालोऽचाण्डालः, पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणः, तापसोऽतापस। [बृह० उप० ४, ३, २२]

(यहाँ पिता पिता नहीं, माता माता नहीं लोक लोक नहीं, देव देव नहीं, वेद वेद नहीं रहता। यहाँ चोर चोर नहीं, हत्यारा हत्यारा नहीं, चाण्डाल चाण्डाल नहीं, पौल्कस पौल्कस नहीं, भिक्षु भिक्षु नहीं, और तपस्वी तपस्वी नहीं रहता है।)

जाने की कोई ठौर ही न रही तो फिर भँडुवे मन ने कहाँ जाना है? सहज समाधि है।

जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर॥
मोहि तो सावन के अन्धहि ज्यों सूझत रंग हरो॥

क्या माँगना भी उपासना का अंग है?

माँगना दो प्रकार का है, एक तो तुच्छ "मैं" (अहंता,

ममता) को मुख्य रखकर अपनी वृद्धि और भोग कामना के लिए प्रार्थना करना; और दूसरा ज्ञान-प्राप्ति, तत्त्व-दर्शन, हरि-सेवा को परम प्रयोजन ठान कर आत्मोन्नति माँगना। प्रथम प्रकार की प्रार्थना तो मानो ईश्वर को तुच्छ नामरूप (जीव) का अनुचर बनाना है। अपनी सेवा की खातिर ईश्वर को बुलाना है, उलटी गंगा बहाना है; द्वितीय प्रकार की प्रार्थना सीधी बाट पर जाना है।

आत्मा में चित्त के लीन होने समय जो भी संकल्प होगा, सत्य तो अवश्य हो ही जायगा, परन्तु यदि वह संकल्प अज्ञान, अधर्म और स्वार्थमय है, तो काँटेदार विषभरे अंकुर की नाईं उग कर दारुण परिणाम का हेतु होगा। अहंता, ममता और भोग कामना सम्बन्धी ईश्वर से प्रार्थना करना मैले ताँबे (ताम्र) के बर्तन में पवित्र दूध भरना है। दूध पाकर जो सीखोगे तो पहले ही अपवित्र वासना को क्यों नहीं त्याग देते? अशुभ भावना में औरों का भी बुरा होता है, और अपनी भी खराबी। शुभ भावना, पवित्र-भाव, ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति में न केवल अपना ही कल्याण होता है, बल्कि परोपकार भी। मन में सत्त्व-गुण, शान्ति, आनन्द और शुद्धि हो तो हमारे काम स्वयं ईश्वर के काम होते हैं, पूरे होते देर लग ही नहीं सकती। भागवत पुराण ने एक जगह यह श्लोक दिया है:—

देवासुर मनुष्येषु ये भजन्त्य शिवं शिवं।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम॥

अर्थात प्रायः जो भी कोई त्यागी शिव की उपासना करते हैं, वे धनवान हो जाते हैं, और लक्ष्मीपति विष्णु के उपासक निर्धन रह जाते हैं। इस श्लोक में शिव और विष्णु की द्वाई

बड़ाई दिखाने का तात्पर्य्य नहीं है, शिव और विष्णु तो वस्तुतः एक ही चीज़ हैं। किन्तु अभिप्राय यह है कि जिन लोगों के हृदय में शिवरूप त्याग और वैराग्य बसा है, ऐश्वर्य, धन, सौभाग्य उनके पास स्वयं आते हैं, और जिन लोगों के अंतः-करण लक्ष्मी, धन, दौलत की लाग में मोहित हैं, वे दारिद्र्य के पात्र रहते हैं। जैसे जो कोई सूर्य की तरफ पीठ मोड़कर अपनी छाया को पकड़ने दौड़ता है, छाया उससे आगे बढ़ती जाती है, कभी क़ाबू में नहीं आती। और जो कोई छाया से मुँह फेर कर सूर्य की ओर दौड़े, तो छाया अपने आप ही पीछे भागती आती है, साथ छोड़ती ही नहीं।

कौन प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है:—जिसमें हमारा स्वार्थांश इतना कम हो कि मानो वह सत्य-स्वभाव ईश्वर का अपना ही काम है, और यदि उपासना के समय मारे आनन्द के चित्त की यह दशा हो रही हो—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। (तैत्ति०उप० २-८)

(जहाँ से सकल वाणियाँ बिना पहुँचे मन के सहित वापिस लौट आती हैं।)

तो यही अवस्था ब्रह्मावस्था है और इस कारण सत्य-काम्यता और सत्य-संकल्पता तो स्वभावतः आ जाती हैं।

यह तो रही अति उत्कृष्ट उपासना। उपासना की जरा न्यून स्थिति बच्चे की सी श्रद्धा और विश्वास है, और यह निष्ठा भी क्या प्यारी प्यारी और प्रबल है। बच्चा अपने माता पिता को अनन्त शक्तिमान मानता है, और उनके बल को अपना बल समझकर माता की गोद में बैठा हुआ शाहन्शाही करता है। रेल को भी धमका लेता है, पवन और पक्षियों पर भी हुकुम चलाता है, दरिया को भी कोसने लगता है, और

कोई चीज़ असम्भव जानता ही नहीं। चंद्र सूर्य को भी हाथ में लिया चाहता है:—

चाँद खिलौना ले दे री मैय्या, चाँद खिलौना ले दे।

धन्य हैं वे पुरुष उच्च भाग्य वाले, जिनका इस जोर का विश्वास सचमुच सर्वशक्तिमान् पिता में जम जाय, जो कुछ भी दरकार हुआ, झट देव का पल्ला पकड़ा और करवा लिया। दूध मांगना हो, तो देव से; भोजन, वस्त्र मांगना हो तो देव से। क्या अच्छा कहा है:—

जग जाचये कोउ न जाचये जे जिया जाचये जानकी जान हिरे।
जहिं जाचत जाचकता जर जाहि, जहिं जारे जोर जहानहिरे॥

दुःखी दुष्ट में, और रंगीले मतवाले मग्न में फरक सिर्फ इतना है कि एक के चित्त में कामना अंश ऊपर है, भक्ति अंश नीचे। दूसरे के चित्त में राम ऊपर है, और काम नीचे। एक यदि साजर है तो उलट पलट से दूसरा राजस है।

जब प्रेम और त्याग का अंश उपासना में याचना अंश से अधिक हो, तो वह मांगना भी एक तरह देने ही के तुल्य है। पर भाई! सच बात तो है यह कि 'मांगना नहीं उपासना का कोई अंग नहीं, हां, देना (उवारना) तो उपासना रूप है। जब अपने मतलब के लिए मैं तुम्हारी सेवा करूं, तो उसमें तुम्हारी भक्ति काहे की? यह तो दुकानदारी है, या ठगबाजी। मंगते भिखारी को कोई पास नहीं छूने देता, परमेश्वर तो बादशाह है। भिखमंगे कंगाल बन कर उनके पास जाओगे तो दूर ही से दुर दुर पड़ी होगी। बादशाह से मिलने चले हो? परे फेंको मैले कुचैले, फटे पुराने इच्छा रूपी चीथड़े। "ज्वानों के ज्वान महिमान"। जब तक तुम बादशाह न बनोगे, बादशाह के पास नहीं बैठ सकते। इच्छा कामना री गंध तक उड़ा दी, बस पर

बैठो त्याग के तख्त पर, धारण करो वैराग्य के मोती, पहन लो ज्ञान का मुकुट, और वह तुम्हारे पास से कभी हिल जाय तो मुझे बाँध लेना।

टूने कामन करके नी ! प्यारा यार मनावांगी।
इस टूने नूँ पढ़ फूकांगी सूरज अगन जलावांगी ॥
सात समुन्दर दिग दे अन्दर दिल से लहर उठावांगी।
बदली होकर चमक डरावां वन बादल घर घर जावांगी ॥ टूने०
टूने कामन करके नी ! मैं प्यारा यार मनावांगी।
इश्क अंगीठी अस्पंद तारे सूरज अगन चढ़ावांगी।
लो सवां शौह नूँ गल अपने तद मैं नार कहावांगी ॥
टूने कामन करके नी ! मैं प्यारा यार मनावांगी।
ना मैं व्याही, न मैं क्वारी, वेटा गोद खिलावांगी।
बुल्हा लामकां दी पौड़ी उत्ते, बहके नाद बजवांगी ॥ टूने०

[पंजाबी काफ़ी, बुल्हा शाह]

उपासना और ज्ञान

उपासना ऐसे है जैसे गुणन के उदाहरण सिद्ध करना, और ज्ञान यह है कि वीज गणित तक पहुँच कर उस गुणन की विधि का कारण आदि भी जान जाना। उपासना साधन है, ज्ञान सिद्ध अवस्था। उपासना में यत्न के साथ अन्दर वाहर ब्रह्म देखा जाता है। ज्ञान वह है जहाँ यत्नरहित स्वाभाविक अन्दर तो रोम रोम से "अहं 'ब्रह्मास्मि" के ढोल अन्य सब वृत्तियों को दबा दें, और वाहर हरत्रिसरेणु "तत्त्वमसि" का दर्पण दिखाता हुआ भेद-भावना को भगा दे। वह ज्ञान ही असली त्याग है:—

त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्।

त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः ॥

(आत्म-साक्षात्कार में प्रपञ्च का छोड़ना ही त्याग है। तुरन्त ही मोक्षमय होने के कारण त्याग बड़े लोगों से पूज्य है।)

जहाँ श्रुति ने त्याग का उपदेश वर्णन किया है "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" वहाँ त्याग का लक्षण इतना ही किया है ॥

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ॥ (ईश० उप० १)

जो कुछ दीखे जगत में सब ईश्वर से ढांप।
करो चैन इस त्याग से धन लालच से काँप ॥

ऊपर ऊपर के त्याग इस असली त्याग के साधन हैं, यह त्याग रूपी ब्रह्मदृष्टि यत्नतः करना उपासना है। "अब यह त्याग रूपी उपासना भी और त्यागों या दानों की तरह होगी, करें या न करें, किसी को पैसा दें या न दें, हमारी इच्छा पर है"—जो ऐसा समझे हैं धोखे में हैं। यह त्याग रूपी उपासना आवश्यक है। आवश्यक क्यों? इसलिए कि और कहीं ठंड पड़ने की नहीं।

वृत्ति तब तक एकान्त नहीं हो सकती, जब तक मन में कभी यह आशा रहे और कभी यह इच्छा। शान्त वह हो सकता है जिसे कोई कर्तव्य और आवश्यकता खींच घसीट न रही हो। अपने आप तो इन वासनाओं ने पीछा छोड़ना ही नहीं। जब भी पल्ला छूटेगा, आप छुड़ाना पड़ेगा। इसलिए जीने तक की आशा को भी त्याग कर मन को ब्रह्मानन्द में डाल दो। एक दिन तो शरीर को जाना ही है, सदा के लिए पट्टा तो लिखवा कर लाये ही नहीं थे। आज ही से समझ लो कि था ही नहीं, और ब्रह्मानन्द के सागर में शङ्का रहित होकर कूद पड़ो। आश्चर्य यह है कि जब हम इन कामनाओं को छोड़ ही बैठते हैं, वे अपने आप पूरी होने लग पड़ती हैं।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिला बद्धपद्मासनस्य ।
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधना योगनिद्रां गतस्य ॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः ।
कण्डूयन्ते जरठ हरिणाःश्रृङ्गसंगे मदीये ॥ [भर्तृहरि]

(गंगा किनारे, हिमालय की शिला पर, बद्ध पद्मासन लगाये हुए, ब्रह्मध्यान का अभ्यास करते, योगनिद्रा को प्राप्त, मेरे शरीर से बुड्ढे हिरन निःशंक हुए अपने शरीरों को खुजलावें, क्या ऐसे मेरे सुदिन कभी होंगे ?

(वैराग्यशतक ६८)

जब दिल में त्याग और ज्ञान भरता है, और शान्त साक्षी बन कर विचार (observation) शक्ति आती है, तो वही दुनिया जो माया का परदा हो रही थी, राम की झांकियों का लगातार प्रवाह बन जाती है। 'दर्शन धारा' कहला सकती है, एक रस अभिव्यञ्जक हो जाती है। वे लोग जो भेद-वाद और अभेद-वाद के शास्त्रार्थ में लीन हैं उनको झगड़ने दो, उस अवस्था के लिए बुद्धि की यह छानबीन भी अयुक्त नहीं, परन्तु जब बुद्धि (अर्थात् सूक्ष्म शरीर) के तल से उतर कर कारण शरीर (subjective mind, ganglionic conciousness) में ज्ञान भाव का दीवा जलता है, तो ये झगड़े तै होते हैं; और जब तक मनुष्य के आन्तर-हृदय (मानो सातवें परदे) में राम का डंका नहीं बजता, तब तक उसे न उपासना ही रस देगी, न ज्ञान, न वेद की संहिता का अर्थ आयगा, न उपनिषद् का।

जैसे भूके भूक अनाज, तृषावन्त जल सेती काज ।
जैसे कामी कामिनी प्यारी, वैसे नामे नाम मुरारि ॥

टेलीफोन द्वारा प्यारे ने बातें की, टेलीफोन प्यारी लगने लगी। जब तक मोहन दूसरी जगह है, टेलीफोन की बड़ी कदर

है। जब मोहन अपने घर आगया, तो अब टेलीफोन से क्या? ये मित्र, सम्बन्धी, राजे, धन, दौलत सब टेलीफोन हैं, जिन द्वारा राम हमसे बोलता था। जब तक राम नहीं मिला था, दिल कांपता था कि हाय! इन बिना कैसे मरेंगी? वह प्यारा घर आ गया, आ मिला, अब तो हे मित्र गण! मुझको भले छोड़ दो, सम्बन्धी जनो! त्याग जाओ, धन दौलत! लुट जाओ, भाग जाओ, इज्जत सन्मान! बेशक पीठ दिखाओ, यहाँ बैठे क्या करते हो, राजाजी! निकाल दो अपने देश से, घर रक्खो अपनी दुनिया।

राजा रूठे नगरी राखे अपनी, मैं हर रूठे कहां जाना?
अब दिलबर घर आया है, नैनों का फर्श बिछाऊँगी।
गुण औगुण पर धर चिन्गारी, यह मैं धूप धुकाऊंगी।
प्राणों की मैं सेज करूँगी, हरि को गले लगाऊँगी।

शिवोऽहम् भाव (अद्वैत-दृष्टि) बिना सम्यक् शुद्धि नहीं होगी।

"शिवोऽहम्" तो सभी कहते हैं, क्या भेदवादी, क्या अभेदवादी, क्या भक्त, क्या कर्मकाण्डी, क्या हिन्दू, क्या और कोई, सबही अपने दिल के भीतर से अपने आप को बड़े से बड़ा मानते हैं और साबित करते हैं। यह भेदवादी भक्त जो अभी मन्दिर में देव के सामने अपने तईं 'नीच-पापी, अधम-मूर्ख' कहते कहते थकता नहीं था, जब बाहर बाजार में निकला, तो उसे कोई "अरे ओ नीच" कहकर पुकारे तो सही, फिर देखो तमाशा, कलाइयों में क्या क्या गति होती है। अन्दर का 'शिवोऽहम्' कभी मर ही नहीं सकता। मरे क्योंकर? नीच को नीच कहो? पर हां! अपने तईं देहादि रूप कर जो

सत्य मानता हूँ, अपने आप को परिच्छिन्नदेहादि जानता हूँ, अर्थात् शुद्ध स्वरूप को भूल कर शरीर में जम कर भेददृष्टि से देखता और विचार करता हूँ, तो अवश्यमेव तीन तापों में कोई न कोई आन घेरता है। मेरी दृष्टि थोड़ी गिरे तो ताप भी थोड़ा होता है, बहुत गिरे, तो ताप भी बहुत। इस क्षुद्र-दृष्टि और तुच्छ भावना का फल खेद-दुःख मिले बिना कभी नहीं रहता। और जब देहादि स्वप्न को परे मार, भेदभावना को उड़ाकर आत्मदृष्टि खोलता हूँ, तो संसार के तत्व ऐसे हो जाते हैं, जैसे किसी के अपने हाथ पैर, जिस तरह चाहे हिला ले। प्रकृति की चाल मेरी आँखों की कटाक्ष हो जाती है। यही कानून और सब लोगों के दुःख सुख लाने में भी राज करता है, इसको न जान कर लोग मरते हैं। यह कानून कहीं कच्चा सूत न समझ लेना, अनाड़ी का काता हुआ। यह वह लोहे का रस्सा है, जिससे इन्द्र और सूर्य भी बांधे पड़े हैं। संसार समुद्र में यह वह एक पत्थर की चट्टान है जिसको न देखकर महाराजे, पण्डित, देव और दानव अपने जहाजों (पोतों) को तोड़ बैठते हैं। वंशों के वंश, कौमों की कौमें, मुल्कों के मुल्क इस कानून को भुला कर मट्टी में मिल चुके हैं।

अजगर ने समझा कि कृष्ण को खा ही लूँगा और पचा जाऊँगा। लो खा गया, पर पेट के अन्दर चली कटारियाँ। खंड', भंड होकर, आतशबाजी के अनार की तरह अजगर उड़ गया, और कृष्ण वैसे का वैसा शेष रहा। क्या तुम इस सत्य रूपी कानून को खा सकते हो? दबा सकते हो? छिपा सकते हो? इस सत्य को किसी का लिहाज नहीं। और तो और, खुद कृष्ण के कुल वाले जब सत्य को मखौल में उड़ाने लगे, और अपनी तरफ से मानो इसे रंगड़ रगड़ कर रेत में मिला

भी गये, तब भी यह सत्य मटिया मेट होकर फिर उगा, और क्या कृष्ण और क्या यादव सबके सबको हड़प कर गया, द्वारका पर पानी फिर गया। भाई! मुर्दे को उठा कर जो चिल्लाया करते हो "राम राम सत्य है", आज पहले ही समझ जाओ, अभी समझ लो तो मरोगे ही नहीं, मरने के वक्त, गीता तुम्हारे किस काम आयगी? अपनी जिन्दगी को ही भगवन् का गीत बना दो। मरते वक्त दीवा (दीपक) तुम्हें क्या उजाला करेगा? हृदय में हरिज्ञानप्रदीप अभी जला दो।

कृष्ण त्वदीय पद पंकज पञ्जरान्ते।
अद्यैव मे विशतु मानस राजहंसः॥
प्राण प्रयाण समये कफ वात पित्तैः।
कण्ठावरोधन विधौ स्मरणं कुतस्ते॥ [पाण्डव गीता]

पतितः पशुरपि कूपे निःसर्तुं चरणचालनं कुरुते।
धिक्त्वां चित्त भवाब्धेरिच्छामपि नो बिभर्षि निःसर्तुम्॥

(हे कृष्ण भगवान्! आपके चरण कमल रूपी पिंजड़े में मेरा हंस रूपी मन आजही बैठ जाये, क्योंकि प्राणान्त समय में कफ वात पित्त से कण्ठ रुक जाने के कारण मन के स्वस्थ न होने पर आपका स्मरण कैसे हो सकेगा। कुँए में गिरा हुआ पशु भी निकलने के लिए पैरों को चलाता है। लेकिन हे चित्त! संसार रूपी समुद्र में पड़े हुए तुम उससे निकलने की इच्छा तक नहीं करते हो। इसलिए तुम्हें धिक्कार है!)

एक जुलाहा भूखों मर गया. उसकी मां मुर्दे के मुंह और मुछों को पैसे का घी लगाकर सबको दिखाती थी, "देखो! मेरा पुत्र भूखा नहीं मरा, घी खाता और घी लगाता गया है।" प्यारे! तुम्हारी मुक्ति तो जुलाहे का घी है। रोकड़ मुक्ति (नकद निजात) अर्थात् जीवन-मुक्ति जब मिल सकती है तो क्यों न लेनी?

सच्चा उपासक

भाई ! सच्ची कहें ? उपासक और भक्त होने की पदवी हमको तो नसीब नहीं। हमने तो सच्चा उपासक सारी दुनिया में एक ही देखा है। बाक़ी भक्तों, ऋषियों, मुनियों, पीरों पैग़म्बरों का "प्रेममय उपासक" कहलाना एक कहने ही की बात है। वह सच्चा आशिक़ और उपासक कौन है, जिसको लोग उपास्य देव कहते हैं, क्योंकर ? प्रेमी, जार (यार) की तरह छिप छिप कर छेड़ता है। शनैः शनैः वृत्ति की कन्नी (चित्त का आँचल) खींचता है। अनेक प्रकार के भेष बदल कर, रंग रूप धारण करके स्वाँग भरके परदों की ओट में नयनों की चोट मार जाता है। जब मन अनात्म पदार्थों में कहीं लग जाता है तो हा ! फिर उसके मान करने (रूठने) की क्या कहना ? भृकुटी कुटिल किये कैसा कैसा कोप दिखाता है। जब वृत्ति मार्ग में कहीं रुक जाय, तो चुटकियाँ भरता है। दम तो लेने नहीं देता, आराम तो नाम को भी और कहीं नहीं मिलने पाता, सिवाय एक मात्र उस राम की निष्काम शय्या के।

हे प्यारे ! अब आशिक़ होकर रूठना (मचलना) कैसा ? अब रस चखा कर नटते हो ? हे प्राणनाथ ! इधर देखो ! वह दुष्ट शिशुपाल आ पड़ा, छीन कर ले चला तुम्हारी हक़्क़ानी (ईश्वरत्त्व) को। कुछ रीस, शर्म भी है ? यह वक्त तो मान करने का नहीं, आओ !

त्वमसि ममभूषणं, त्वमसि ममजीवनं, त्वमसि ममजलधिरत्नं।
भवतु भवतीह मयि सतत मनुरोधिनस्तत्र ममहृदयमतियत्नं॥

[जयदेव]

(आप ही मेरे भूषण हैं, आप ही मेरे जीवन हैं आप ही मेरे समुद्रो-

मग्न रहता हूँ। निरन्तर मेरे ऊपर कृपा करने वाले आप में मेरा हृदय बड़े यत्न के साथ लग जावे।)

सूर्य को बारह महीने तेज (प्रकाश) दे दिया मुफ्त में। हमको आठों पहर निजानन्द देते कङ्गाल तो नहीं हो चले?

हे प्रभो! अब तो मुझ से दो दो बातें नहीं निभ सकतीं। खाने-पीने, कपड़े-कुटिया का भी ख्याल रक्खूँ और तुम्हारे का भी मुख देखूँ। चूल्हे में पड़े पहनना, खाना, जीना, मरना। क्या इनसे मेरा निर्वाह होना है? मेरी तो मधूकरी हो तो तुम, कमली हो तो तुम, कुटि हो तो तुम, औषधि हो तो तुम, शरीर हो तो तुम, आत्मा हो तो तुम। शरीरादि को रखना चाहते हो तो पड़े रक्खो। अकर्त्ता बन रहे हो, निकम्मे बैठे क्या करते हो? करो सेवा।

आँखें लगा के तुमसे न पलकें हिलायेंगे।
देखेंगे खेल हम, तुम्हें आगे नचायेंगे॥

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः॥ (यजुर्वेद)

तुम्हारी खातिर हे प्रभो! यह मन या तन ही बीच॥

ले लो अपनी चीज। वार कर फेंक दो अपने "बेनाम" पर। थाली भर भर कर हीरे, जवाहिरात, तुझ पर वार वार कर फेंके गये। जिनको लोग तारे, नक्षत्र, ग्रह, चन्द्र, सूर्य और पृथिवी कहते हैं, लूट लो ज्योतिषियो! लूट लो तत्त्ववित्ता-नियो! लूट लो सौदागरो! राजाओ लूट लो! पर हाय! मार डालो, तो भी मैं तो यह माल नहीं लूँगा। डालो पर वार कर फेंका हुआ टका रुपया लूटना गैरों और लोगों का काम है। मैं तो वही लूँगा, वही, परदे वाला, तुम्हारा, प्यारा।

उपासना के मंत्र।

तासीर इस उपासना की होती है, जो दिल से निकले।

गले के ऊपर ऊपर से निकले हुए उपासना के वाक्य तो मानो मखौलबाजी है और परमेश्वर को झुटलाना है। जैसी चित्त की अवस्था होगी, सच्ची उपासना की वैसी सूरत होगी।

(१) विद्यार्थी (मुमुक्षु) की प्रार्थनाः—

(क) ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषातन्वो अद्यदधातु मे॥
पुनरेहिवाचस्पते देवेनमनसासह।
वसोष्पतेनिरमय मय्येवास्तु मयिश्रुतम्॥
इहै वाभिवतनूभे आर्त्नीइवज्यया।
वाचस्पतिर्नियच्छतु मय्येवास्तु मयिश्रुतम्॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
संश्रुतेन गमेमहिमाश्रुतेनविराधिषि॥ (अथर्व वेद)

[वेद स्वरूप वाणी का पालक (आज) मेधादि उत्पन्न करने के समय, सम्पूर्ण चेतनाचेतनात्मक वस्तु को अभिमत फल देने से पोषण करते हुए, प्रतिदिन, प्रति वर्ष, प्रतिकल्प, प्रति शरीर यथोचित घूमने वाले तीन और सात संख्या वाले देवताओं के असाधारण सामर्थ्य अर्थात् श्रुत धारणादि सामर्थ्य को, मेधा इत्यादि को चाहते हुए मेरे शरीर में धारण करे। तीन से पृथिव्यादि तीनों लोक उनके अधिष्ठाता (अग्नि वायु आदित्य) सत्व रजस् तमोगुण, ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर इत्यादि, जो जो तीन संख्या युक्त हैं; लिये जाते हैं, सात से सप्तर्षि, सप्तग्रह। सातों मरुद्गण, सातों लोक इत्यादि सात संख्या वाले लिये जाते हैं।)

हे वाचस्पते! वेद स्वरूप वाणी के पालक! ब्रह्म अभिमत फल प्रदान के लिए अनुग्रह बुद्धि से युक्त हो, बारम्बार, मेरे पास आइये। (हे वसोष्पते) ग्राम-पश्वादि रूप धन के स्वामिन्! आप में ग्रामादि अनेक फल देने की शक्ति है, इसलिए हम से इच्छित नाना प्रकार के फलों के सम्पूर्ण दान से निरन्तर हम लोगों को सुख दीजिये। आपसे

किया हुआ ग्रामादि मेरे ही पास रहे और गुरु से पढ़ा हुआ वेद शास्त्रादि विस्मरण न हो, इसलिए उसके धारण करने के लिए मेधा भी दीजिए।

हे वाचस्पते! इसी साधक जन में दोनों अर्थात् सुनी बात को धारण करने वाली मेधा और नाना प्रकार के भोगों के कारण ग्रामादि सम्पत्ति को विस्तीर्ण कीजिये, अर्थात् सब लोगों से मुझ ही में अधिक कीजिये। जिस प्रकार धनुष की प्रत्यञ्चा धनुष की कोटियों (कोनों) को खींचती है, उसी प्रकार मुझे दोनों वस्तुओं को दीजिये, अर्थात् वे न आना चाहें तो भी बलपूर्वक मेरे पास पहुँचाइये। और हे विधाता! दिये हुए समस्त फल को मेरे में दृढ़ कीजिये। और सुनने योग्य अर्थात् मेधादि को मेरे में सबसे अधिक कीजिये।

समीप में आह्वान किया गया (बुलाया गया वाचस्पति) वेद शास्त्रादि का पालक, मेधा इत्यादि चाहने वाले हम लोगों को चाहे हुए फल देने की अनुज्ञा करे। और उसकी अनुज्ञा से प्राप्त मेधा से हम वेद शास्त्रादि को प्राप्त होवें और उस वेद शास्त्रादि से हमारा कभी वियोग न हो। अर्थात् वेद शास्त्रादि से हम सर्वदा युक्त रहें।]

इसमें वाच् (वाणी) के पति [वाचस्पति] रूप ब्रह्म का ध्यान है। जब तक लोहा अग्नि में पड़ा रहे, अग्नि के गुण उसमें आ जाते हैं, इस तरह जब बुद्धि वाच् [या मन] के पति सर्वव्यापी चैतन्य में कुछ काल अभेद रहे, तो उसमें विचित्र शक्ति कैसे न आ जायगी?

कोई भी मन्त्र हों, उनको खाली पढ़ या गा ही नहीं छोड़ना, किन्तु पढ़कर उनके भावार्थ में मन को लीन और मग्न होने देना चाहिए?

[ख] यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥
[यजुर्वेद]

भावार्थः—क्या जाग्रत, क्या स्वप्न, क्या सुषुप्ति, तीनों दशा में मेरा मन किसी और विचार की तरफ न जाने पाये, सिवाय शिवरूप आत्मचिन्तन के। चलते, फिरते, बैठे, खड़े मेरा मन शिवरूप सत्यस्वरूप आत्मा के सिवाय और कोई चिन्तन न करने पाये। इसी प्रकार शु० यजु० अ० ३४ के अगले पाँच मंत्र भी यही भाव प्रकट करते हैं।

(ग) ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् [गायत्री मंत्र]

यहाँ पर पहले तो यह देखना है, कि 'धीमहि' और 'नः' दोनो बहुवचन हैं। एकान्त में अकेले तो इस ब्रह्मगायत्री का ध्यान है और "हम ध्यान करते हैं" "हमारी बुद्धियाँ" ऐसा क्यों? "मैं ध्यान करता हूँ" और "मेरी बुद्धि" क्यों नहीं लिखा? इसमें वेद की आज्ञा यूं है, कि प्रथम तो देहाभिमान रूप स्वार्थदृष्टि और परिच्छिन्नता का परित्याग करना है। सब देश के लोगों को अपना स्वरूप जान कर, सब शरीरों को अपना शरीर मान कर, सब के साथ एक होकर अभेद बुद्धि के साथ यह ध्यान करना है:—

"वह सविता देव जो हमारी बुद्धियों को चलाता है, उसके प्रिय [पूज्य] तेज [स्वरूप] का हम ध्यान करते हैं।" "प्रचोदयात्" में महीधर और सायणाचार्य ने व्यत्यय माना है और यह ठीक भी है। सूर्य रूप सविता देव को हमारी बुद्धियों का प्रेरक माना है। वही जो सूर्य को प्रकाश करता है वही बुद्धियों को प्रकाशता है, वही आत्मा है।

"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्" ॥" ['यजुर्वेद]
[वह जो सूर्य में पुरुष है वह ही मैं हूँ]

इसका ध्यान करने से क्या लाभः—बड़ी आपदा आन

पढ़ी और संध्या करते समय परमेश्वर को भुलाया नहीं, किन्तु सचमुच बार बार देहदृष्टि को छोड़ कर जो यह ध्यान किया कि "मैं तो सूर्य के प्रिय तेज वाला हूँ, मेरा तो वही धाम है," तो कहिये, चिन्ता जल न जायगी ? प्रतिदिन तीन वक्त, या दो वक्त, या एक काल ही सही, सच्चे भाव के साथ जो इस तत्व में लीन हुए कि "इन बुद्धियों का प्रेरक आत्मदेव हूँ, मैं तो वही हूँ जिसका तेज सूर्यचन्द्रमा में चमक रहा है," तो कहिये कौन सा अन्धेरा खड़ा रह सकता है ? विद्या पढ़ रहे हैं, या कोई बड़ा कार्य हाथ में है, और हर दिन एकान्त में बैठ बैठ और सब तरफ से वृत्ति को खींच, तेज के पुञ्ज में अभेद भावना करते हैं, तो यारो ! दुहाई है अगर यश और कीर्ति खिंच कर तुम्हारे आगे नृत्य न करी करें। क्या "खलु क्रतुमयः पुरुषः" (यह पुरुष सङ्कल्पमय है) श्रुति ने क्या झूठ ही कह दिया था ?

(२) जब चित्त संसार में डूब जाय, कानून कहानी टूट जाय, पाप कर्म हो जाय, आत्मदेव भूल जाय, तब आँसू भरे नयन, जोड़े हुए हाथ, टेकते हुए घुटने, माटी में घिसता हुआ माथा, जलता हुआ दिल, यदि इस प्रकार की उपासना करें, तो वह कौन सा पाप है जो धुल न जायगा :—

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
यत्किञ्चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥
(ऋ० मं० ७ सू० ८९)

हे राजन् वरुण ! आपके मिट्टी इत्यादि से बने हुए गृह में मैं न जाऊँ किन्तु सुन्दर सुवर्ण से बने हुए आपके गृह को जाऊँ—ऐसा आप मुझे सुख देवें। हे शोभन धनवाले वरुण ! आप मेरे ऊपर दया भी करें।

हे सवन और स्वभाव से निर्मल वरुण ! मै अशक्तता के कारण कर्त्तव्य कर्म अर्थात् श्रुति-स्मृति विहित कर्म के विरुद्ध अनुष्ठान करता रहा, अर्थात् श्रुति-स्मृति विहित कर्म न कर सका। इसी लिए आपसे बाँधा गया हूँ। इस दशा में स्थित मुझको सुख दीजिये।

समुद्र के जल के मध्य में स्थित हुए भी आपकी स्तुति करनेवाले मुझको प्यास लग रही है। खारी जल होने से समुद्र का जल पिया नहीं जा सकता। इस प्रकार प्यासे मुझको सुख दीजिये।

हे वरुण ! देव समूहरूप जन में जो कुछ अपकार हम मनुष्य लोग कर रहे हैं और आपके धर्म धारक कर्म को हम लोग अज्ञान से भूल गये हैं। हे देव ! इस पाप से हम लोगों को न मारिये।

सोने का गढ़ छोड़ कर धसूँ न काँटों बीच।
हीरे मोती फेंक कर लेऊँ न माटी कीच॥

अब दया ! हे राम ! अब दया ! मैं भूला, मैं डड़ा, मैं पड़ा, मैं गिरा, मैं मरा। अब दया ! हे राम ! अब दया !

(३) जब तक देह में प्रीति और किसी प्रकार की कामना बनी रहती है, तब तक तो भेद-उपासना ही दिल से निकलेगी। प्रेम, अनुराग जब बहुत बढ़ेगा, तो उपासना की यह शकल हो जायगी :—

तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा॥
तस्मिन्सहस्र शाखे। निभगाहं त्वयिमृजे स्वाहा॥ (तैत्ति० उप०)

(हे सबकी योनिरूप ब्रह्म ! मैं तुझ में प्रवेश करता हूँ। स्वाहा ! हे सबके कारण रूप ओम् या ब्रह्म तू मुझमें प्रवेश कर, स्वाहा ! तेरी जो

सहस्र नामें (हजारों रूप) हैं मैं उनमें वा तुममें हे भग! अपने को नहलाना और शोधन करता हूँ। स्वाहा!)

यह भेद-उपासना उच्चतम श्रेणी को पहुँच जाय तो इसका ढंग कुछ यूं होगा —

ॐ गणानांत्वा गणपतिँ हवामहे। प्रियाणांत्वा प्रियपतिँ हवामहे। निधीनांत्वा निधिपतिँ हवामहे। वसो मम, आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ (शु० यजु० संहिता २३। १९)

(हे गणपते! गणों के मध्य में गणों के पालक हम आपका आह्वान करते हैं। प्रियों के मध्य में प्रियों के पालक आपका हम आह्वान करते हैं। सुख निधियों के मध्य में सुख निधियों के पालक आपका हम आह्वान कर रहे हैं। हे वसो! हे प्रजा पते! व्यापक होकर सम्पूर्ण संसार में निवास करने के कारण आप मेरे पालक हूजिये। भग के तुल्य सब संसार की धारक प्रीति के धारण करने वाले या अपनी शक्ति से जगत् के अनादि कारण रूप गर्भ के धारण करनेवाले, या सम्पूर्ण मूर्तिमान् पदार्थों की रचना करनेवाले आपको सब प्रकार से सम्मुख करता हूँ। हे सब जगत् के तत्त्वों में गर्भ रूप बीज के धारण करनेवाले! आप सब प्रकार जानने और सम्मुख होते हैं।

है गो कि यह तकरारे-उल्फत तो तुझ से।
कि इतनी यह हो मेरी हिम्मत तो तुझ से॥
मेरे जिस्मो-जां में हो हरकत तो तुझ से।
है सा. मनी की यह शिरकत तो तुझ से॥
मिरा मस्त होने की इज्जत तो तुझ से।
सदा मस्त रहने की लज्जत तो तुझ से॥
रफीकों में मेरे है मुहब्बत तो तुझ से।
अज़ीज़ों में मेरे है मुरव्वत तो तुझ से॥
खजानों में जो कुछ है दौलत तो तुझ से।

अमीरों में है जाहो-सौलत तो तुझ से ॥
हकीमों में है इल्मो-हिकमत तो तुझ से ।
है रौनक जहाँ या है बर्कत तो तुझ से ॥

महेचन .त्वाद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥

(सामवेद ऐन्द्र पर्व, अ० ३ ख० ६ मं० ६)

हे वज्रवाले इन्द्र ! बहुत बड़े मूल्य के लिए मैं आपको नहीं बेचता हूँ । हे वज्रहस्त इन्द्र ! न सहस्र संख्यक धन के लिए और न दस सहस्र धन के लिए मैं तुझे बेंचता हूँ । हे बहुत धनवाले इन्द्र ! अपरिमित धन के लिए भी मैं तुझे नहीं बेचता । अर्थात् कितना ही धन मिल जाय, परन्तु मैं हविओं द्वारा आपका पूजन त्यागना नहीं चाहता ।

(४) पर हाँ, जो लोग सदा के लिए निचले दर्जे की उपासना का पेशा बना लेते हैं वे अनर्थ करते हैं, क्योंकि अगर कोई प्रार्थना एक दफा भी सच्चे दिल से निकली थी तो कोई वजह नहीं कि चित्त की अवस्था बदल न गई होती और दिल का दरजा बढ़ न गया होता। यदि मन दूसरी क्लास (दरजे) में चढ़ गया, तो फिर पहली क्लास में रोना क्यों ? यदि नहीं चढ़ा, तो यह प्रार्थना झूठ बकवास थी, अब झूठी बक वक को पेशा बनाया चाहता है । उपासना का परम प्रयोजन यह था कि शरीर के स्नेह से चित्त मुड़े और आत्मा संग जुड़े । सच्चे उपासक को जब शरीर से हुआ अपराध याद आता है, तो वह 'सांसारिक अपने आप' से भागना चाहता है । हरि की शरण में आता है और आत्मा से तदाकारता पाता है । यदि ऐसा ध्यान एक दफा, दो दफा भी हो जाय तो फायदा है, कोई डर नहीं । परन्तु जो लोग "पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः" को प्रतिदिन पढ़े ही रटते हैं,

उनको इस प्रकार की आवृत्ति न केवल देह से सम्बन्ध पक्का देती है, बल्कि पाप-संस्कार मन में दृढ़ जमा देती है। शुद्ध अन्तःकरण और सच्चे हृदयवालों से भेद-उपासना कभी हो ही नहीं सकेगी, जैसे एम० ए० क्लास के विद्यार्थी का जी मिडल क्लासवालों की पुस्तकों में कभी लग ही नहीं सकता।

ज्ञानी

अब ज़रा चौकन्ने होकर सुनने का समय है। लो, सब सिर फोड़ते हैं भांडा। निर्भयता, जीवन-मुक्ति, स्वाराज्य, स्वराज्य, और किसी को कभी भी नहीं नसीब होते सिवाय उस पुरुष के, जो अपने आपको संशय रहित होकर पूर्ण ब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानन्द नित्य मुक्त जानता है, जो सर्वत्र अपने ही स्वरूप को देखता है। क्यों हिलेगा उसका दिल जो एक आत्मदेव बिना कुछ और देखता ही नहीं? बड़ा भयानक घोर शब्द हुआ, पर सिंह क्यों डरे? वह तो सिंह की अपनी ही गर्ज थी। लोहा तलवार के जौहरों से क्या भय खावे? वे तो उसी के तेज चमत्कार हैं। अग्नि अपनी ज्वाला से आप क्या संतप्त हो? तारे टूट पड़ें, समुद्र जल उठे, हिमालय उड़ता फिरे, सूर्य सारे [illegible] का गोला बन जाय, आत्मदर्शी ज्ञानवान को क्या ग्लानि हो सकेगी, जिसकी आज्ञा से कुछ भी बाहर नहीं हो सकता?

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ [ईश० उप० ७]

(जब एक ही एक देखा गया, अर्थात् सर्वत्र ईश्वर का अनुभव हुआ, तो ऐसे ऐक्य देखने वाले को फिर शोक और मोह कहाँ?)

अपि शीतरुचावर्के सुतीक्ष्णेऽपीन्दुमण्डले।
अप्यधः प्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विस्मयी॥
प्रलयस्यापि हुंकारैर्नो चल(?) विश्वालयैः।
चित्तोभं नैति यस्यात्मा स महानिति कथ्यते॥

सूर्य चाहे ठंढा हो जाय, चन्द्रमण्डल चाहे अत्यन्त गर्म हो जाय, अग्नि चाहे अधोमुख जलने लगे, परन्तु जीवनमुक्त को विस्मय नहीं होता। बड़े बड़े पर्वतों को अपने स्थान से डिगानेवाले प्रलय-हुँकारों से भी जिसका चित्त क्षोभ को नहीं प्राप्त होता, वह महात्मा कहा जाता है।

भेद-भावना दिल से छोड़। निर्भय बैठा मूँछ मरोड़॥

सूर्य उसी के हुकुम से जलता है, इन्द्र उसी का पानी भरता है, पवन उसी का दूत है, उसी के आगे दरिया रेत में माथा रगड़ते हैं, राजे-महाराजे, देवी-देवता, वेद किताब जो कुछ भी है, एक आत्मदर्शी का संकल्प मात्र है। तीनों भुवन और चारों खानि जङ्गल हैं, जिनमें रौनक केवल एक चैतन्य पुरुष रूप ज्ञानवान् की है। त्रिलोकी लालटेन है, जिसमें ज्योतिरूप ज्ञानवान् है। चौदह लोक एक शरीर हैं, प्राण जिसके ज्ञानवान् हैं। बस वही सत् है, और कुछ भी नहीं। पृथ्वी अन्न पैदा करती है कि कभी ब्रह्मनिष्ठ के चरण पड़ें। ऋतु बदलते हैं कि कभी आत्म-स्वरूप महात्मा के दर्शन नसीब हों। "सुर तिय, नर तिय, नाग तिय," इन सबको उदर में बोझ उठाने पड़े, वेदना सहनी पड़ी, उस एक अज, अमर रूप ज्ञानी को प्रकट देखने के लिए। दुनिया के राज-काज उसके लिए थे, वह आया तो राज-काजों की ड्यूटी (कर्तव्य) पूरी हुई। घर बनते रहे थे, कपड़े बुने और पहने जा रहे थे, ब्रह्मनिष्ठ की पधरावनी के लिए। वह आया, सब परिश्रम सफल हो गये। रेलें चलती थीं, पोतें बहती थीं, कभी ब्रह्मनिष्ठ तक पहुँचने के लिए। युद्ध होते थे, लोग मरते थे, कभी जीवनमुक्त की झाँकी के लिए। नाना विधि विकास (evolution.)एक ज्ञानवान् रूप फल की खातिर था। उपा-सना, प्रार्थना, भक्ति, नाक रगड़ना, आठ आठ आँसू रोना,

प्रेम की जरदी (पीत) कब तक थी, जब तक ज्ञान की लाली नहीं आई।

ब्रह्मविद् इव सोम्य ते मुखं भाति॥ (छांदो० दप०)

(हे प्यारे! तेरा मुख ब्रह्मवित् के समान दीखता है)

प्रसंख्यान

अभेद उपासना की विधि; मनन, निदिध्यासन.—शास्त्र में से उन वाक्यों को चुन लिया, जो मन में खुबते, चित्त में चुभते हैं। और उनको एकांत में बैठकर नीचे दिखाई विधि से बर्ता। जैसे शङ्कर के आत्मपंचक स्तोत्र को ले लिया—

नाहं देहोनेंद्रियाण्यन्तरङ्गम्।
नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः॥
दारापत्यक्षेत्रवित्तादि दूरः।
साक्षीनित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहं॥

भावार्थः—

नहीं देह, इन्द्रिय, न अन्तः करण।
नहीं बुद्धि अहंकार या प्राण मन॥
नहीं क्षेत्र, घर बार, नारी, न धन।
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्दघन॥

चौथे पाद को दिल में बारम्बार लगाया, और नीचे दिखाये विचार पूर्वक दोहराते गये, यहाँ तक कि मन शिथिल हो जाय। निस्सन्देह, ऐसी तहकीकात (मीमांसा) से जिसमें विकल्प कभी स्वप्न में भी युक्त नहीं, मैं देह आदि नहीं, फिर देह-भ्रम को अपने में क्यों आने दूंगा? देहाभिमान करना, कुटिल दलील को उत्पन्न करना है, महा मूर्खता, बेहूदगी है।

मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन॥

निस्संदेह वेद, वेदान्त का अन्तिम निष्कर्ष है और कुछ नहीं। वेद और सत् शास्त्र मुझको देह आदि से भिन्न बताते हैं, मेरा अपने तईं देह आदि ठानना घोर नास्तिक बनना है, यह अपराध मैं क्यों करूँ ?

मैं शिव हूँ मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥

गुरु जी ने मुझे अपने साक्षात्कार के बल से कहा—"मैं देह आदि नहीं।" फिर मेरा देहाभिमान रखना पूज्यपाद गुरु जी के मुँह और ज़बान पर जूते मारना है। हाय! यह उपद्रव मैं क्यों करूँ ?

मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥

शरीर आदि की पीड़ा, सम्बन्ध, लोगों की ईर्षा, द्वेष, सेवा, सम्मान से मुझे क्या ? कोई बुरा कहे, कोई भला कहे, मैं एक नहीं मानूँगा। जो आप भूले हुए हैं, उनका क्या भरोसा ? केवल शास्त्र और प्रमाण ही माननीय हैं, मुझमें कोई पीड़ा नहीं, कोई शोक नहीं, ईर्षा नहीं, राग नहीं, जन्म नहीं, मरण नहीं, मन नहीं।

मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ चिदानन्द घन ॥
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥

माँ छोटे बच्चे को आम्रफल खेलने को देती है। बच्चा दस्तूर के मुवाफ़िक़ हाथ से पकड़ कर मुँह के पास ले जाता है, और लगता है चूसने। चूसते चूसते आख़िर वह फल फूट पड़ा, और बच्चे के हाथ पर, मुँह पर, कपड़ों पर रस ही रस फैल गया। अब तो न कपड़े याद हैं, न माँ याद है, न हाथ मुँह का ही होश है, रसरूप हो रहा है। इसी तरह श्रुति माता का दिया

हुआ यह पक्का हुआ महावाक्य रूपी अमर फल एकान्त अन्त:करण के साथ दुहराते दुहराते आखिर फूट पड़ता है, और परमानन्द समाधि आ जाती है।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ [ब्रह्म सूत्र ४-१-२]

जब सर्व देश अपने आत्मा में पाने लगे तो परोक्ष क्या रहा? और स्थान सम्बन्धी चिन्ता क्योंकर उठे? जब सर्व काल में अपने तईं देखा, तो कल परसों आदि की फिकर कहाँ रही? जब सर्व मनुष्य और पदार्थ सचमुच अपना ही रूप जाने गये, तो यह धड़का कैसे हो कि हा! जाने अमुक पुरुष मुझे क्या कहता होगा? जब कार्यकारण सत्ता आप हुए, तो चित्तवृत्तियों का बेड़ा कैसे न डूबे? मन पारा खाये हुए चूहे की तरह हिलने झुलने से रह जायगा। मानों चित्त के बच्चे ही मर गये। सहज समाधि तो स्वयं होनी ही होगी।

क्या सोचे, क्या समझे राम तीन काल का वाँ क्या काम?
क्या सोचे, क्या समझे राम, तीन लोक नहिं उपजा धाम।
नित्य तृप्त सुखसागर नाम, क्या सोचे क्या समझे राम!

इस सिर से गुजर जाने में जो स्वाद, शांति और शक्ति आती है, वही जानता है जो इस रस को चखता है। राजा जनक ने यह अमृत पीकर अपना अनुभव यूँ वर्णन किया है:—

नाहमात्मार्थ मिच्छामि गन्धान घ्राण गतानपि।
तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थं मिच्छामि रसानास्येऽपि वर्त्तत।
आपो मे निर्जितास्तस्माद्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुप.।
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥
नाहमार्त्थ मिच्छामि स्पर्शान् त्वचि गताश्चये।

तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि शब्दान् श्रोत्रगतानपि ।
तस्मान्मे निर्जिता शब्दावशे तिष्ठन्ति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि मनो नित्यं मनोऽन्तरे ।
मनोमे निर्जितं तस्माद् वशे तिष्ठति सर्वदा ॥ [महाभारत]

भावार्थ उर्दू पद्य में

अपने मज़े की ख़ातिर गुल छोड़ ही दिये जब ।
रुए-जमीं के गुलशन मेरे ही बन गये सब ॥
जितने ज़बाँ के रस थे कुल तर्क कर दिये जब ।
बस जायके जहाँ के मेरे ही बन गये सब ॥
ख़ुद के लिए जो मुझसे दीदों की दीद छूटी ।
ख़ुद हुस्न के तमाशे मेरे ही बन गये सब ॥
अपने लिए जो छोड़ी ख्वाहिश हवा ख़ुरी की ।
बादे-सबा के झोंके मेरे ही बन गये सब ॥
निज की ग़रज़ से छोड़ा सुनने की आरज़ू को ।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गये सब ॥
जब बेहतरी के अपनी फ़िक्रो-ख़याल छूटे ।
फ़िक्रो-ख़याले-रंगी मेरे ही बन गये सब ॥
आहा ! अजब तमाशा ! मेरा नहीं है कुछ भी ।
दावा नहीं ज़रा भी इस जिस्मो-इस्म पर ही ॥
ये दस्तो-पा हैं सबके, आँखें ये हैं तो सबको ।
दुनिया के जिस्म लेकिन मेरे ही बन गये सब ॥

एक छोटे से बालक (वामदेव) का यह अनुभव है:—

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मिविप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयन्युञ्जेहं कविरुशना पश्यतामा ॥
अहं भूमिमददामार्या याहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।

अहमपो अनयं नावशन्त मम देवासो अनुकेत मायन्॥
[ऋग्वेद, ४, २, २६]

[गर्भस्थित वामदेव ऋषि ने ज्ञान उत्पन्न होने पर अपने आत्म-अनुभव को इस प्रकार दर्शाया है:—"मै ही मधु हूँ, मैं ही सूर्य हूँ, मेधाने दीर्घतमा का पुत्र कक्षीवान् नामवाला ऋषि मैं ही हूँ। अर्जुनी के पुत्र कुत्स को भी मैं ही जानता हूँ। कवि अशना मै ही हूँ। मैने ही मनु को पृथिवी दी है। मै ही गरजते हुए बादलों (जलों) को सर्वत्र पहुँचाता हूँ। सभी देवतागण मेरे ही संकल्पानुसार कार्य करते हैं।]

प्रणव (ॐ) में इन मंत्रों के अर्थ का रंग भरकर, अर्थात् 'ॐ' को महावाक्य (ब्रह्मास्मि) का अर्थ देकर जपना, गाना, श्वास में भरना, चलते फिरते चितवन में रखना, ब्रह्मसाक्षात्कार में बहुत बड़ा साधन है।

एक स्त्री (वाक्) अपने स्वरूप को जानकर यूँ गाती है:—

१–अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवै:।
अहं मित्रावरुणाभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥
२–अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजनाय सुन्वते॥
३–अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्या वेशयन्तीम्॥
४–मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति, यः प्राणिति य ईंशृणोत्युक्तम्
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति, श्रुधिश्रुतः श्रद्धिवं ते वदामि॥
५–अहमेव स्वयमिदं वदामि, जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं तमृषिं सुमेधाम्॥
६–अहं रुद्राय धनुरा तनोमि, ब्रह्म द्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश॥

७–अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिप्स्वस्य १ न्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वो तामूद्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥
८–अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथि, व्यैतावती महिना संवभूव॥

[ऋग्वेद ८–७–११ सूक्त १२५]

[इस सूक्त में परमात्मा से तादात्म्य का अनुभव करती हुई अंभृण महर्षि की कन्या ब्रह्म विदुषी वाक् नामवाली ने अपने को सर्व जगद्रूप और सर्वाधिष्ठान में ही हूँ ऐसा मानते हुए इस प्रकार से अपनी स्तुति की है।

१—मैं ही रुद्र रूप से और मैं ही वसुरूप से घूम रही हूँ। मैं ही आदित्य रूप से तथा विश्वेदेवा रूप से घूम रही हूँ। मैं ही (ब्रह्मरूप रूप होने से) मित्र और वरुण को धारण करती हूँ। इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को मैं ही धारण करती हूँ। मेरे ही में सम्पूर्ण जगत् (शुक्ति में रजत के समान) अध्यस्त है।

२—सोम को मै ही धारण करती हूँ। इसी प्रकार त्वष्टा, पूषा तथा भग को मैं ही धारण करती हूँ। तथा हवि से युक्त और सुन्दर हवि से देवताओं को तृप्त करनेवाले, सोमवल्ली के रस को निकालनेवाले, यजमान के लिए यज्ञ फल रूप (धन) को मै ही धारण करती हूँ।

३—सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी मै ही हूँ। उपासकों को धन देनेवाली अर्थात् उपासना का फल देनेवाली मैं ही हूँ। यज्ञ करनेवालों में मैं प्रधान हूँ। इस प्रकार गुणों से युक्त, जगत्प्रपंच से स्थित, सम्पूर्ण भूतों को जीव भाव से अपने में प्रवेश करती हुई मुझे ही देवता लोग बहुत स्थानों में (आवाहन) करते हैं, अर्थात् जो करते हैं वह मुझको ही करते हैं।

४—जो अन्न खाता है वह अन्न मुझसे ही खाया जाता है। जो देखता व श्वास लेता है वह मुझसे ही देखा और श्वास लिया जाता है।

और जो कहा हुआ सुना जाता है वह भी मुझसे ही कहा तथा सुना जाता है। जो इस प्रकार अन्तर्यामी रूप से स्थित मुझे नहीं जानते, वह मेरा ज्ञान न होने से संसार में ही क्षीण हो जाते हैं। हे विद्वन्! श्रद्धा और यत्न से मिलने योग्य ब्रह्म रूप वस्तु का मैं उपदेश करती हूँ, उसको सुनो।

५—मैं ही स्वयं इस (ब्रह्मरूप) वस्तु को कह रही हूँ। देवताओं से सेवित तथा मनुष्यों से सेवित मैं जिस-जिस पुरुष की रक्षा करना चाहती हूँ। उस उसको सबसे अधिक वर देती हूँ। उसी को जगत् का पैदा करनेवाला ब्रह्मा बनाती हूँ। उसीको (ऋषि) अर्थात् अतीन्द्रिय पदार्थों का देखनेवाला बनाती हूँ। उसी को अच्छी बुद्धिवाला बनाती हूँ।

६—ब्राह्मण द्वेषी और हिंसक त्रिपुरासुर के मारने के लिए मैं ही महादेवजी के धनुष को प्रत्यंचा से युक्त करती हूँ। तथा मैं ही भक्तों की रक्षा के लिए शत्रुओं के साथ संग्राम करती हूँ। तथा मैं ही पृथ्वी और आकाश में अन्तर्यामी स्वरूप से प्रविष्ट हूँ।

७—इस भूलोक के ऊपर पितृरूप आकाश को मैं ही पैदा करती हूँ। (आत्मा से आकाश और आकाश से सृष्टि पैदा होने के कारण आकाश को पिता कहा है)। नीचे समुद्र में जल प्रदान मुझ कारण रूप से ही होता है। और भी सम्पूर्ण स्वर्गादि विकारों का कारणभूत मायात्मक अपने देह से स्पर्श करती हूँ। मैं इस प्रकार की हूँ। इसी कारण से कारण रूप होकर मैं सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर स्थित हूँ।

८—वायु के समान दूसरे की प्रेरणा के बिना ही कार्य रूप सम्पूर्ण भुवनों को कर्त्ता रूप से उत्पन्न करती हुई मैं प्रवृत्त हूँ। पृथ्वी, आकाशादि सम्पूर्ण विकारों से परे, संग रहित उदासीन कूटस्थ ब्रह्म चैतन्यरूप—मैं अपनी महिमा से सम्पूर्ण जगत् के रूप से पैदा होती हूँ।]

गुल खिलते हैं, गाते हैं रो रो बुलबुल।
क्या हंसते हैं नाले नदियाँ ॥
रंगे-शफ़क़ घुलता है, वादे-सबा चलती है।
गिरता है छम छम बारां। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

करते हैं अंजम जग मग, जलता है सूरज धक धक।
सजते हैं बाग़ों-ब्यावां * ॥
बसते हैं लन्दन पेरिस, पुजते हैं काशी मक्का।
बनते हैं जिन्न-उ-रिज़वाँ। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

उड़ती हैं रेवें फरफर, बहती हैं बोटें झर झर।
आती है आंधी सर सर।
लड़ती हैं फौजें मर मर, फिरते हैं योगी दर दर।
होती है पूजा हर हर। मुझमें! मुझमें! मुझमें!
चरख का रङ्ग रसीला, नीला नीला। हर तरफ़ दमकता है
कैलास झलकता है, बहर ढलकता है।
चाँद चमकता है। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

सब वेद और दर्शन सब मजहब।
कुरान † इञ्जील और त्रिपिटका।
बुद्ध, शंकर, ईसा और अहमद।
था रहना सहना इन सबका। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

थे कपिल, कणाद और अफ़लातूँ,
इस्पेन्सर, कैन्ट और हैमिल्टन।

---

* बियाबां, † कुरआन

आ राम, युधिष्ठिर, इसकन्दर,
विक्रम, कैसर, लिङ्कन, अकबर !
मुझमें ! मुझमें ! मुझमें ! मुझमें !
हूँ आगे पीछे, ऊपर नीचे, जाहर बातन मैं ही मैं।
माशूक़ और आशिक शाइर मजनूं बुलबुल गुलशन, मैं ही मैं !

इन्द्र (राजा) के आनन्द का समुद्र यूँ गरजता है:—

१–इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
२–प्रवाता इवदोधत उन्मापीता अयंसत । कुवि०
३–उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशव. । कुवि०
४–उपमा मतिरस्थित वाश्रापुत्रमिव प्रियम् कुवि०
५–अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् । कुवि०
६–नहि मे अक्षिपच्चनाच्छांत्सु पञ्च कृष्टयः । कुवि०
७–नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति । कुवि०
८–अभिद्यां महिना भुवमभी ३ मां पृथिवीं महीम् । कुवि०
९–हन्ताहं पृथिवीमिमानि दधानीह वेहवा । कुवि०
१०–ओपमित्पृथिवीमहं जंघनानीह वेहवा । कुवि०
११–दिवि मे अन्यः पक्षो ३ धो अन्यमचो कृपम् । कुवि०
१२–अहमस्मि महा महोऽभिनभ्य मुदीपितः । कुवि०
१३–गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्य वाहनः । कुवि०
(ऋ० वे० ८–६–२६ सू० ११९)

[इन्द्र इस सूक्त से अपनी स्तुति कर रहा है।]

१–मैं स्तुति करनेवालों को गाय और घोड़े देता हूँ। इस प्रकार का मेरा मन है, इसीलिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

२–अत्यन्त कम्पित वायु जिस प्रकार वृक्षादि को (जल) पहुँचा देता

है, उसी प्रकार पान किये गये सोम मुझे अत्यन्त शीघ्र पहुँचा देते हैं। इसी कारण से कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

३—जिस प्रकार शीघ्रगामी घोड़े रथ को पहुँचा देते हैं, उसी प्रकार पिये गये सोम मुझे पहुँचा देते हैं, इसी कारण से कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

४—जिस प्रकार शब्द करती हुई धेनु प्रिय बछड़े से जा मिलती है, उसी प्रकार स्तुति करनेवाले से की गई स्तुति मुझे उन लोगों से युक्त करती है। इसीलिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

५—बढ़ई जिस प्रकर रथ को ठीक करता है, उसी प्रकार मैं भी मन से स्तुमि को (ठीक) सफल करने जाता हूँ। इसी कारण से कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

६—देवता और मनुष्यादिक मरी दृष्टि से वस्तु को छिपा नहीं सकते। इसीलिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

७—पृथ्वी और द्युलोक दोनों मेरे पक्ष (पर) की भी समानता नहीं कर सकते। इसी लिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

८—ऊपर कही बात का इस मन्त्र से समर्थन करते हैं। मैं अपनी महिमा से द्युलोक को नीचा दिखलाता हूँ और इसी प्रकार इस बहुत बड़ी पृथ्वी को नीचा दिखलाता हूँ। इसी कारण से कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

९—मैं इस बात की सम्भावना करता हूँ कि मैं इस पृथ्वी को उठाकर अन्तरिक्ष या द्युलोक में रख दूँ। इसी लिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

१०—पृथ्वी के सामने अपने तेज से सन्ताप देनेवाले आदित्य को मैं अन्तरिक्ष या द्युलोक में बहुतायत से पहुँचा दूँ। इसी लिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

११—मेरा एक पक्ष (पर) द्युलोक में स्थापित है। नीचे पृथ्वी पर मैंने

दूसरा पक्ष स्थापित किया है। इसीलिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

१२–अन्तरिक्ष में उदय को प्राप्त हुए सूर्य स्वरूप मैं ही अत्यन्त तेजस्वी हूँ। इसीलिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

१३–मैं हविओं का ग्रहण करनेवाला, यजमानों से अलंकृत, इंद्रादि देवताओं को हवि पहुँचानेवाला अग्नि स्वरूप होकर हविओं को प्राप्त करता हूँ। इसीलिए कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है, इस प्रकार इन्द्र ने अपनी स्तुति की।]

पीता हूँ नूर हरदम, जामे-सरूर पै हम।
है आसमाँ पियाला, वह शरावे-नूर वाला॥
है जी में अपने आता, दूँ जो है जिसको भाता।
हाथी गुलाम घोड़े, जेवर ज़मीन जोड़े।
ले जो है जिसको भाता, माँगे बग़ैर दाता॥ पीता०

हर क़ौम की दुआयें, हर मत की इल्तजायें।
आती हैं पास मेरे, क्या देर, क्या सवेरे।
जैसे अहाती गाये, जंगल से घर को आये॥ पीता०

सब ख्वाहिशें, नमाजें, गुण, कर्म, और मुरादें।
हाथों में हूँ फिराता, "मेमार जैसे ईंटें—
हाथों में घुमाता", दुनिया हूँ यूँ बनाता॥ पीता०

दुनिया के सब बखेड़े, झगड़े फ़साद फेड़े।
दिल में नहीं रड़कते, न निगह को बदल सकते।
गोया गुलाल हैं यह, सुर्मा मिसाल हैं यह॥ पीता०

नेचर के लाज़* सारे, अहकाम हैं हमारे।
क्या मेहर क्या सितारे, हैं मानते इशारे।
हैं दस्तो-पा हर इक के, मरज़ी पै जैसे चलते ॥ पीता०

कशिशो-सिक़ल की क़ुदरत, मेरी है मेहरो-उलफ़त।
है निगाहे-तेज़ मेरी, इक नूर की अन्धेरी।
बिजली, शफ़क़, अंगारे, सीने के हैं शरारे ॥ पीता०

मैं खेलता हूँ होली, दुनिया है गेंद गोली।
ख़्वाह इस तरफ़ को फेकूँ, ख़्वाह उस तरफ़ चला दूं।
पीता हूँ जाम हरदम, नाचूँ मुदाम धम धम।
दिन रात है तरन्नम, हूँ शाहे-राम वेग़म ॥ पीता०

किंकरोमि क्वगच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम्।
आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा ॥
सबाह्याभ्यन्तरे देहे ह्यधः ऊर्ध्वं च दिक्षु च।
इत आत्मा तथेहात्मा नास्त्यनात्ममयं जगत् ॥
न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मयि।
किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं संविन्मयं ततम् ॥
स्फार ब्रह्मामलाम्भोधि फेनाः सर्वे कुलाचलाः।
चिदादित्य महा तेजो मृगतृष्णा जगच्छ्रियः ॥

भावार्थः—

कहाँ जाऊँ ? किसे छोड़ूं ? किसे ले लूं ? करूँ क्या मैं ?
मैं इक तूफ़ाँ क़यामत का हूं ? पुर हैरत तमाशा मैं ॥
नहीं कुछ जो नहीं मैं हूं, इधर मैं हूं, उधर मैं हूं।
मैं चाहूं क्या ? किसे ढूँढूँ, सबों में ताना बाना मैं ॥

---

*Laws of Nature प्रकृति के नियम।

मैं वातिन, मैं श्रयां, जेरो-जावर, चपरास्त, पेशो-पस।
जहाँ मैं, हर मकां मैं, हर जमां, हूंगा, सदा था मैं॥

अस्मे सूर्या चन्द्रमसाभि चक्षे।
श्रद्धेकमिन्द्रचरतोवितर्तुरम्॥

The sun and the moon revolve in regular succession that we may have faith, O India! For *this* the universe did roll.

हे इन्द्र! 'हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो' इस कारण ही सूर्य और चन्द्र नियमानुसार पारी, पारी से नित्य भ्रमण करते रहते हैं। इसी हेतु ब्रह्माण्ड भी ढुलका!

ॐ ॐ ॐ



ईश्वर-भक्ति

न कभी थे बादा-परस्त हम, न हमें ये कैफे-शराब है,
लबे-यार चूमे थे ख़्वाब में, वही जोशे-मस्तीए-ख़्वाब है।

[न हम कभी सुरा-प्रेमी थे और न हमें मदिरा का उन्माद ही है। (हमने तो) स्वप्न में (अपने) प्यारे के अधरों का चुम्बन किया था, उसी स्वप्न की मस्ती की गर्मी है।]

कहते हैं सूर्य तेरी छाया है, मनुष्य तेरे नमूने पर बनाया गया है, मनुष्य में तेरा श्वास फुँका हुआ है। तू फूलों में हँस रहा है, वर्षा में तार-तार आँसू बहाता है। हवा तेरी ही साँस है। रातों को मानो तू सोता है। दिन चढ़ना मानो तेरी जागृत अवस्था है। नदियों में तू गाता फिरता है। इन्द्र-धनुष तेरा झूला है। प्रकाश की बहिया में तू 'क्विक-मार्च' (quick march-तेज गति) करता चला जाता है। हाँ, यह सच है कि यह रङ्ग-बिरङ्ग जामा, यह इन्द्र-धनुष, ये बादल, ये नदियाँ, ये वृक्ष, ये तरह-तरह के कपड़े तेरे से अन्य नहीं। तू ही इन सब सारियों में झलक रहा है। ये सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक कपड़े मल-मल या जाली के कपड़े हैं, जो तेरे शरीर को—तेरे तेजोमय स्वरूप को—आधा दिखाते और आधा छिपाते हैं। ऐ प्यारे! ये चादरें और कपड़े क्यों? यह अपने आप को पर्दों और जामों में छिपाना कैसा? यह घूँघट की ओट में चोटें करने के क्या अर्थ? क्या पर्दों को उठाकर बाहर आने में तुझे लाज आती है? क्या तेरा शरीर, तेरा स्वरूप सुन्दर नहीं है जो तू नङ्गा होने में झिझकता है? क्या तेरे सिवा कोई और है

जिससे तू शरमाता है ? अगर यह बात नहीं है, तो प्यारे ! फिर ये कपडे, यह जामा, यह बुर्क़ा, यह पर्दा उतार। आज तो हम तुझे नंगा देखेंगे—उघारा देखेंगे। देखेंगे, और अवश्य देखेंगे। प्यारे ! ओ प्यारे !! उतार दे कपड़े। आ मेरे प्यारे !!!

क्यों ओहले वैह वैह झाकीदा ?
कहो पर्दा कस तों राखीदा ?

अर्थात् ओट में बैठ बैठ कर ऐ प्यारे ! तू क्यों झाँकता है ? और कहो यह पर्दा तू किससे रख रहा है ?

उसने इसका जो उत्तर दिया वह बिजली की तरह मेरे हृदय में चमक गया। वह उत्तर यह था—"न तो शरम है मुझे नंगा होने में, न डर है, और न कुरूप हूँ जो कपड़े उतारने में झिझकता हूँ। लेकिन क्या तू सचमुच मुझसे प्रेम रखता है ? क्या तुझको मुझसे सच्ची प्रीति है ? मैं भी मुद्दत से तेरे प्रेम के मारे बादलों में रो-रोकर और बिजली में आँखें फाड़-फाड़कर तेरी खोज में था। क्या तू मेरा प्रेमी है ? अगर है तो जल्दी कर। कपड़े उतार। तू अपने उतार, मैं अपने उतारूँ। ले, अभी मिलाप होता है। देर न कर ; गले मिल। चिकें और पर्दे फाड़ डाल। दीवारें ढहा दे, नंगा तो हो। नंगा: ख़ुदा से चंगा। यह दर्जा, यह अहंकार, यह शरीर और नाम की पाबंदी (क़ैद), यह मेरा तेरा, ये दावे, ये तरह तरह के मंसूबे, ये तरह तरह की हुकूमत-बाजियाँ, यह तरह तरह की हीलासाज़ियाँ (बहाने बाजियाँ) उतार दे यह कपड़े ! अरे उतार दे यह कपड़े !"

कपड़े उतारे तो क्या था ? उसकी रज़ाइयाँ, दुलाइयाँ उसके लिहाफ़ और तोशक (यह बादल, यह वर्षा, यह रात और दिन) मेरे लिहाफ और तोशक हो गये। दोनों एक ही बिस्तर में पड़ गये। अब क्या था !

मन तो शुदम, तो मन शुदी ; मन तन शुदम, तो जाँ शुदी ।
ता कस न गोयद बाद जीं, मन दीगरम तो दीगरी ॥

अर्थात् मैं तू हुआ, तू मैं हुआ; मैं तन हुआ, तू प्राण हुआ । जिससे कोई पीछे यह न कहे कि मैं और हूँ, तू और है ।

इस मस्ती के जोश में रज़ाइयाँ और दुलाइयाँ भी उतर गईं । न कपड़े रहे, न रङ्ग-रूप; न दुनिया रही, न दीन; नाम और रूप का चिह्न ही न रहा । आप ही आप अकेला रह गया ।

आप ही आप हूँ याँ, ग़ैर* का कुछ काम नहीं ।
ज़ाते‡—मुतलक़ में मिरी शक्ल नहीं, नाम नहीं ॥

वास्तव में लेक्चर तो बस इतना ही होना चाहिए था—

दिया अनपी ख़ुदी को जो हमने मिटा,
वह जो पर्दा सा बीच में था न रहा ।
रहे पर्दे में अब न वह पर्दानिशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा ॥

अब सुनिये कि ख़ुदी क्योंकर मिटती है । क्या ख़ुदी का मिटना और है और ख़ुदा का पाना और ?—नहीं, एक ही बात है । बहुतों का यह ख़याल है कि ख़ुदी को निकालने से ख़ुदा मिलता है ।—

हरदम अज़ ना ख़ुन ख़राशम सीनह-ए-अफ़गार रा ।
ता जि दिल बेरूँ कुनम ग़ैरे-ख़याले-यार रा ॥

अर्थात् मैं (अपने) हृदय-तल को इस लिए हरदम नखों से खुर्चा करता हूँ कि (मेरे) दिल से प्यारे से भिन्न का ख़याल दूर हो जाय ।

लेकिन अपना तो यह अनुभव है कि ख़ुदा के पाने से ख़ुदी निकलती है । जब यार ही यार रह गया तब ख़ुदी निकल गई ।

---

* दूसरा, अन्य । ‡ तत्त्व स्वरूप या वास्तविक स्वरूप ।

चुनाँ पुरशुद फिजाए-सीनह अज़ दोस्त।
ख़याले-ख्वेश गुमशुद अज जमीरम॥

अर्थात् मित्र के ख़याल से मेरा हृदयाकाश ऐसा भर गया कि मेरे मन से अपने आप का ख्याल ही खो गया।

एक प्याले में पानी या तेल भरा था। उसनें पारा डाल दिया, तो पानी या तेल आप ही निकल गया। बुल्हे शाह नाम का पंजाब में एक साधु हुआ है। वह सैयद (मुसलमान) कुल का था, जाति का नहीं। (जाति का तो प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर ही है।) उसका गुरु माली कुल का था। वह अपने गुरु के पास गया और रो-रोकर कहा—"भगवन्! कृपा कीजिये, दया कीजिये, कोई ऐसा उपाय बताइये कि ख़ुदी (अहंकार) दूर हो और ख़ुदा को पाऊँ।" उस समय उसका गुरु माली प्याज की क्यारी से एक गाँठ एक तरफ से उखाड़कर दूसरी तरफ लगा रहा था। उसने कहा—"ख़ुदा का क्या पाना है, इधर से उखाड़ना, उधर लगाना।" तुम कहते हो ख़ुदा आसमान पर है। अरे! आसमान पर बैठे बैठे-बादलों में रहते रहते-तेरे ख़ुदा को जुकाम हो जायगा। उखाड़ उसको वहाँ से और जमा दे अपनी छाती मे, यहाँ वह गर्म रहेगा, और ख़ुदी के ख़याल (मै) को उखाड़ अपनी छाती से और बो दे सब देहों मे। ऐसा प्रेम पैदा कर कि सब शरीरों की "मैं" को अपनी "मैं" समझने लगे। ख़ुदी का निकालना और ख़ुदा का पाना एक ही बात है, दोनों एक समानार्थ हैं। मगर ख़ुदी का यह पर्दा किस तरह मिटता है? दो रीतियों से, और दोनों रीतियों पर चलना आवश्यक है। देखो, यह रुमाल का एक पर्दा है, जो मेरी आँख पर रक्खा हुआ है। इस पर्दे के उठाने का एक उपाय तो यह है कि आँख पर

से उठा लिया, या यों सरका दिया या गिरा दिया, अर्थ एक ही है; मगर सब दशाओं में पर्दे को सिर्फ़ सरकाया गया, फाड़ा नहीं गया; हटाया गया, पतला नहीं किया गया। लेकिन अगर पर्दे को सिर्फ हटाते ही रहें, तो यह पर्दा ऐसा है, जैसे झील या तालाव पर काई। जब हम इस काई को सरका देते हैं, तो साफ़ पानी झलकने लगता है। थोड़ी देर के बाद वह काई फिर अपनी जगह पर आ जाती है, और स्वच्छ पानी छिप जाता है। यही संसारी लोगों का हाल है। वे ख़ुदी के पर्दे को हटा कर ख़ुदा के दर्शन करते हैं, मगर सिर्फ़ थोड़ी देर के लिए। स्थायी एकता प्राप्त करने के लिए एक और क्रिया की आवश्यकता है।

काई को थोड़ा-थोड़ा तालाब के बाहर फेंकते जायँ, तो वह पतली होती चली जायगी, और धीरे-धीरे तालाब नितान्त साफ़ हो जायगा। इसी तरह उस पर्दे को, जो मनुष्य और ईश्वर के बीच में पड़ा है, अगर सदैव के लिए उठाना है तो उसका उपाय और है। राम हिमालय में रहा है, जहाँ उसने अमरनाथ, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री आदि की पैदल यात्रा की है। इसने कई बार रास्ते में साँप देखे, जो देखने में मुर्दा दीखते थे, मगर वास्तव में वे सर्दी में जकड़े हुए कुण्डली मारे इस तरह पड़े हुए थे, मानो उनमें जान ही नहीं है। राम ने उनमें से एकाध को पकड़ कर हिलाया तो मालूम हुआ कि जीते हैं। एक आदमी एक साँप को जो देखने में मुर्दा था, पकड़ लाया। बच्चों ने ले जाकर उसको धूप में रख दिया। गर्मी पाकर वह जी उठा अब तो लगा फुंकारने। एकाध लड़के को उसने डस भी लिया। इस तरह आप के मन रूपी साँप से आपकी ख़ुदी थोड़ी देर के लिए जब दूर हो जाती है, तो मन चेष्टा रहित हो जाता है।

उस समय तुम योग की अवस्था में होते हो। मन के इस तरह से मर जाने का नाम ईश्वर-दर्शन व आत्मसाक्षात्कार है। ख़ुदी (अहङ्कार) के मिट जाने का नाम ईश्वर से अभेद है। किन्तु स्थायी एकता (अभेद) के लिए मन रूपी साँप को मुर्दा साद कर देना काफी नहीं है। साँप के दाँत तोड़ डालिये, फिर चाहे साँप जागता हो या सोता। मुर्दा दीखता हो या जिन्दा, होश में हो या न हो—कोई परवा नहीं, कोई डर नहीं। जब उसमें विष ही न रहा तो फिर उसका चलना फिरना उसके न चलने-फिरने के समान है। वेदान्त तो बे-दाँत है।

एक यत्न तो यह था कि थोड़ी देर के लिए इस मन को मुर्दा बना लो। जैसे किसी सत्संग मे बैठिये, मन ने प्रेम की ठण्डक पाई और मुर्दा हो गया। मगर जब घर में आये और गृहिणी ने गर्म-गर्म चूल्हा दिखा दिया, तो गर्मी पाकर जहर फिर वैसा ही हो गया।

एक मनुष्य ने शराब पीकर घर बेंच डाला। जब होश में आया तो अर्जी दी कि "मैंने शराब पीकर घर बेंच डाला था, मेरे होश-हवास ठीक न थे। अब मैं अपने इकरारनामे से इनकार करता हूँ।" इसी तरह मनुष्य एक ओर तो कहता है कि 'हे ईश्वर! सब तेरे अर्पण, मैं तेरा, माल तेरा, जान तेरी, घर-बार तेरा, तेरा, तेरा आदि—।' जब घर में गया और स्त्री ने बाँह दिखा कर कहा कि मेरा चूड़ा (जेवर) पुराना हो गया, लड़के का विवाह है, और इसी तरह के खट्टे अचार खिलाये गये, तो सब नशे उतर गये। सब तन-मन-धन ईश्वर से छीन लिया। ख़ुदी की क़ैद मे आ फँसे। प्रेम-सुराही पीकर थोड़ी देर के लिए सब कुछ ब्रह्मार्पण कर देना भी खूब है। लेकिन सदा त्याग तो होश-हवास होते हुए साक्षात्कार की कृपा से

होता है। अगर मनुष्य चाहे तो दुई के पर्दे को सदैव के लिए तोड़ सकता है। उपाय यह है कि पर्दे की तहों को पतला बनाते चले जाओ। इस तरह तहें उतारने से पर्दा पतला होता चला जायगा, यहाँ तक कि वह इतना पतला हो जायगा कि उसका होना और न होना बराबर हो जायगा। पर्दे को झटका देना कर्म है, और सदैव के लिए पर्दे को पतला करते-करते उठा देना आत्मसाक्षात्कार है।

अब संसार में जितने धर्म हैं, राम उनको तीन श्रेणियों में विभक्त करता है। उनमें सब आ जायँगे। एक तो वे हैं जिनके पर्दे को राम कहता है "तस्यैवाहं" अर्थात् "मैं उसी का हूँ।" फिर वे हैं जिनकी अवस्था को हम "तवैवाहं" अर्थात् "मैं तो तेरा ही हूँ" नाम दे सकते हैं। इसके आगे वे हैं जिनका दुई का पर्दा ऐसा पतला हो गया है मानों है ही नहीं "त्वमेवाहं" अर्थात् "मैं तो तू ही हूँ" अनलहक़, शिवोऽहम् है। यह पर्दा भी जब बिलकुल उठ जाता है, तो ये शब्द भी नहीं कहे जा सकते।

"तस्यैवाहं"—"मैं उसी का हूं"-वालों के लिए ईश्वर ओट (पर्दे) में है, "तवैवाहं"—"मैं तेरा ही हूँ"-वालों के लिए ईश्वर समक्ष उपस्थित है, सामने आ गया, पर्दा सूक्ष्मतर हो गया। दूरी बहुत कम रह गई। "त्वमेवाहं"—"मैं तो तू ही हूँ"—वालों के लिए ईश्वर स्वयं वक्ता हो गया, अन्तर बिलकुल मिट गया, पर्दा बहुत ही सूक्ष्म हो गया। लेकिन मोटाई के विचार से पर्दा किसी अवस्था में हो, तब भी पर्देवाली भेद भाव की दशा कहलाती है। और पर्दा जब बिलकुल उठाया जाय, तो वाणी और जिह्वा से परे की अवस्था हो जाती है। पूर्ण ज्ञानी कहता है:—

अगर यक सरे मूए बरतर परम।
फ़रोग़े तजल्ली बिसोज़द परम॥

अर्थात् अगर मैं बाल बराबर भी इससे अधिक बढ़ूँ, तो तेज का प्रकाश मेरे परों को जला दे।

जहाँ से वाणी और शब्द इस तरह लौट आते हैं जिस तरह दीवार की ओर फेंका हुआ गेंद ठोकर खाकर लौट आता है; वहाँ पर शब्द भी नहीं, वाणी भी नहीं, वहाँ अनलहक़, ब्रह्माऽस्मि, शिवोऽहम् कहने का पतला पर्दा भी न रहा। जहाँ सच्चा प्रेम होता है, वहाँ प्रेम के बढ़ते-बढ़ते दूरी या अन्तर का रहना असम्भव है। पर्दा कहीं रह सकता है? कदापि नहीं। सांसारिक प्रेम का एक उदाहरण लीजिये। यहाँ सब प्रकार के मनुष्य मौजूद हैं। बताइये, किसका किसके साथ अधिक प्रेम है। इसका उत्तर यह है—"उसके साथ जिससे दुई का अन्तर थोड़ा है।" मनुष्य को जो प्रेम अपने भाई से है, दूसरे से नहीं। जैसी प्रीति पुत्र से होगी, भाई से न होगी। क्या कारण है? पुत्र को जानता है कि वह मेरा खून है—मेरा हृदय, मेरा अन्तःकरण है—मेरी जान, मेरा प्राण है। आकर्षण का नियम (Law of Gravitation) भी यही है। जितनी ही दूरी कम होती जायगी, दूरी के घटाव के हिसाब से आकर्षण बढ़ता जायगा। ज्यों ज्यों दूरी कम होती जाती है, प्रेम अधिक होता जाता है, और यही दशा उसके अक्स (प्रतिबिम्ब) की है। ज्यों ज्यों प्रेम बढ़ेगा, अन्तर कम होता जायगा।

वादए-वस्ल चूँ शवद नज़दीक।
आतिशे-शौक़ तेजतर गर्दद॥

अर्थात् मिलने या एक होने का वादा जितना ही निकट होता जाता है, शौक़ (आनन्द) की अग्नि उतनी ही तेज़ होती जाती है।

स्त्री या प्रियतमा के साथ भाई और बेटे से भी अधिक प्रेम होता है। पुत्र तो खून, हड्डी और चाम से पैदा हुआ था; स्त्री

को तुम अर्द्धांगी, अपना ही आधा शरीर कहते हो, अपना ही दूसरा अपना आप समझते हो। प्रियतमा के साथ प्रेम क्या इसका सहन कर सकता है कि समय या स्थान की दूरी दोनों के बीच में पड़ जाय? कदापि नहीं। अगर समय की दूरी है, तो जी चाहता है कि दुनिया की जंत्रियों में से जुदाइ के दिन साफ़ उड़ जायँ; अगर पचीस मील की दूरी है, तो इच्छा होती है कि यह दूरी न रहे; अगर सिर्फ़ दीवार का बीच है, तो कहते हो कि यह भी बीच से हट जाय तो अच्छा है; अगर कपड़े का अंतर रह गया, तो जी चाहता है कि यह कपड़ा भी बीच से उठ जाय; अगर हड्डी और चाम का अंतर रह गया है, तो ऐ छाती, हड्डी, खून और मांस! निकल-निकल, बिल्कुल निकल जा, यार हम, हम यार।

मन तो शुदम तो मन तनं शुदम तो जाँ शुदी।
ता कस न गोयद बाद-अज़ीं, मन दीगरम तो दीगरी॥

जब तक तुम दोनों एक नहीं हो जाते, प्रेम दम नहीं लेने देता। ये दुनिया के दर्जे हैं। जब दुनिया के प्रेम के ये दर्जे हैं, तो क्या ईश्वर के प्रेम में कोई और दर्जे हो जायँगे? संसार में एक यही नियम है, जो तीनों लोकों पर प्रभाव डाले हुए है, जो त्रिलोकी पर शासन करता है। जब प्रेमी की आँखों से आँसू के बूँद टपकते हैं, तो वहीं आकर्षण का नियम काम करता है, जो आकाश में तारे टूटते समय। इधर आँसू की बूँद गिरी, उधर तारा टूटा, एक ही नियम की बदौलत। संसारी प्रेम और ईश्वरीय प्रेम दोनों के लिए एक ही नियम है। अगर प्रेम सच्चा है तो जब तक पूर्ण एकता न हो लेगी, वह विश्रान्ति न लेने देगा।

अब राम वह उदाहरण देगा जिसमें दिखाया जायगा कि

पर्दा मोटे से मोटा क्यों न हो, बिना पतला किये भी सरक सकता है। मगर वही थोड़ी देर के लिए। हिंदू-मुसलमानों के यहाँ सैकड़ों दृष्टांत मौजूद हैं जिनसे विदित होगा कि सच्चे प्रेम भरे भक्तों और बुजुर्गों की सचाई के बल से कैसा दलदार पर्दा उठ जाता है। मौलाना रूम ने एक गड़रिये का दृष्टान्त दिया है कि वह गड़रिया दूर पर्वत पर एक पहाड़ी की चोटी पर खड़ा हुआ प्रार्थना कर रहा था—"हे ईश्वर! दया कर, तरस खा। अपने दर्शन दे। देख मैं तेरे लिए अपनी खोंगड़ बकरियों का ताजा-ताजा दूध लेकर आया हूँ। अपनी झाँकी दिखा। मैं तुझे यह दूध पिलाऊँगा। मैंने दही जमाया है, जिससे तेरे बाल धोऊँगा। तेरी मुट्ठी भरूँगा। मैंने सुना है, तू एक है, अद्वितीय है, और अकेला है। हाय! जब तू चलता होगा तो तेरे पैर में काँटे चुभते होंगे, रोड़े चुभते होंगे। कौन तेरे काँटे निकालता होगा। कौन रोड़े अलग करता होगा। मैं तेरे काँटे निकालूँगा, रास्ते से रोड़े अलग करूँगा। हे प्रभो! कृपा कर, मैं तेरे पंखा झलूँगा, तेरे पैर दबाऊँगा, तेरी जुएँ निकालूँगा।" वह यह कहता और रोता जाता था। इतने मे हजरत मूसा पधारे। डण्डा निकाल बेचारे की पीठ पर दे मारा और कहा—"ऐ काफिर! तू क्या बकता है? खुदा को इलजाम लगाता है? खुदा की शान में कुफ्र के कलमे निकालता है? कहता है, मैं तेरी जुएँ निकालूँगा। अरे जालिम! क्या इस तरह खुदा मिलता है?" गड़रिये ने कहा—"क्या खुदा न मिलेगा?" मूसा ने कहा—"नहीं, तुझ पापी को न मिलेगा।" यह सुनकर बेचारा गड़रिया कहने लगा—"अगर तू नहीं मिलता तो ले हम भी नहीं जीते।" यह कहना था कि उसी समय एक बूढ़े पुरुष ने कूदकर उसके कंधों पर हाथ रख दिया। यदि ईश्वर है, और

क्यों नहीं, और अगर वह ऐसे अवसरों पर भी हाथ न रक्खे, तो अपने हाथ काट डाले।

सद् जाँ फ़िदा आँ कि ज़ुबानो-दिलश यकेऽस्त।

अर्थात् सैकड़ों प्राण उस पर न्योछावर हैं जिसकी वाणी और मन एक है।

इसका नाम है धर्म। धर्म शरीर और बुद्धि का आधार है। मन और बुद्धि का उसमें लीन हो जाना ही धर्म है। उस व्यक्ति में, चाहे वह किसी प्रकार का या किसी ढंग का था, उसके शरीर, नाम, मन, बुद्धि कुछ ही थे, मगर वह ईश्वर को कोई दूसरा नहीं जानता था। वह उसके तत्त्व में लीन हो गया। सचाई इसको कहते हैं, विश्वास इसी को कहते हैं। मूसा ने कहा—"गड़रिये! तू ईश्वर से ठठोली कर रहा है?" राम कहता है कि जो लोग इस गड़रिये से अधिक ईश्वर का ज्ञान रखते हैं, लेकिन अगर सचाई नहीं रखते, अगर उनकी वाणी और मन एक नहीं, तो वे लोग ईश्वर से मखौलबाज़ी करते हैं। वह गड़रिया ईश्वर को जानता था। ईश्वर को माननेवाले की बात और होती है और जाननेवाले की और। यदि यहाँ कोई अँगरेज़ आ जाता है जैसे डिप्टी-कमिश्नर, कमिश्नर या लेफ्टेंट गवर्नर, तो सबके सब उठ खड़े होते हैं। सब चुप; काटो तो देह में खून नहीं। उनको उसके सामने झूठ बोलने का साहस नहीं होता, किसी स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखने की हिम्मत नहीं होती, वे कोई और भी बुरा काम नहीं करते। परमेश्वर को मानते और सर्वव्यापी व सर्वदर्शी जानते हो? मगर हाय ग़ज़ब! उस सर्वव्यापी और सर्वदर्शी को मानते हुए किसी स्त्री को देखो और बुरी दृष्टि पड़े? उस स्त्री के नेत्रों में परमेश्वर का प्रकाश था, उससे आँखें लड़ाते और ईश्वर को मानते तो क्या पछाड़

खाकर न गिर पड़ते ? अब राम कहता है कि शाबाश है उस गड़रिये को, उस पर सब ईश्वर से ठठोली करनेवाले न्योछावर हैं।

इस प्रकार के दृष्टान्त और भी हैं। एक हिंदू का दृष्टान्त अब राम देगा। एक लड़का हुआ है नामदेव और उसका नाना था वामदेव। यह वामदेव ठाकुरजी की मूर्ति की पूजा करता था। लड़का अपने नाना के पास आकर कहता है, नानाजी, यह क्या है ? नाना ने कहा:—"ठाकुर है, परमेश्वर गोपाल के रूप में आया हुआ है।" लड़के ने गोपालजी की मूर्ति देखी। कृष्ण एक छोटा सा बालक है, वह घुटनों के बल चल रहा है, वह मक्खन का पेड़ा चुराये हुए चुपके-चुपके लौटा आ रहा है। कुछ दूर आगे बढ़कर, पीछे घूमकर देख रहा है कि माँ ने तो नहीं देखा। एक हाथ में तो मक्खन है और दूसरा हाथ भूमि पर टिका हुआ है। यह पत्थर की मूर्ति है या किसी धातु की ? यह बाल गोपाल प्यारे कृष्ण की मूर्ति है। उस लड़के ने इस ईश्वर को देखा। और इस उदाहरण के अनुसार कि:—

कुनद हमजिंस बा हमजिंस परवाज।
कबूतर बा कबूतर बाज़ बा बाज॥

अर्थात् हमजिंस अपने हमजिंस के साथ उड़ा करता है, जैसे कबूतर कबूतर के साथ और कौआ कौआ के साथ।

छोटा सा बच्चा बड़े भारी ईश्वर से कैसे प्रीति करता ? बच्चे के लिए बच्चा ही ईश्वर होगा, तो उसको उससे प्रेम होगा। प्रेम किसी के कहने-सुनने से नहीं होता। प्रेम वहीं होगा जहाँ हमारा इष्ट होगा। छोटे से नामदेव के मन में निराकार परमेश्वर का ख़याल क्योंकर जमता ? उसके मन में तो यही

माखनचोर परमेश्वर जमा । राम छोटा था तो उसके मन को भी इसी चोर ने चुराया था। लड़का अपने नाना से कहता है:— "मैं उसकी पूजा करूँगा।" नाना ने कहा—"तू उसकी पूजा के योग्य नहीं है, न नहाता है, न धोता है।" एक दिन नाना चला गया, तो नानी से कहा:—"नानी ! ठाकुरजी को नीचे उतार दो, मैं पूजा करूँगा।" नानी ने कहा:—"कल सवेरे, जब नहा धो लोगे।" उस रात को कई बार चौंक पड़ा और नानी व माँ को जगाकर कहता है:—"सवेरा हो गया, ठाकुरजी को नीचे उतार दो।" वह कहती है, "अभी रात है, सो रहो।" अन्त में सवेरा हुआ। रात बीती। लड़का नदी में डुबकी मारकर जल्दी से आ गया। विधि-विधान तो वह जानता न था, पानी जो लाया था उसमें ठाकुरजी को डुबो दिया। और जल्दी निकाल कर कुछ पोंछा, कुछ छोड दिया। अब माँ से लड़का कहता है:—दूध लाओ। बडी कठिनता से दूध आया। कुछ कच्चा, कुछ पक्का। सामने रख दिया कि पीजिए। बच्चे को ख़बर न थी कि नाना झूठमूठ ठाकुरजी को भोग लगाते थे। मगर बच्चे में सचाई थी। प्रायः लोगों का ज्ञान केवल जिह्वा पर होता है, हृदय में नहीं। मगर बच्चे में यह चतुरता न थी। उसके रोम-रोम में प्रेम भर गया था। वह दूध रखकर कहता है:—"महाराज! पियो।" ठाकुर नहीं पीता। अरे क्या तेरा हृदय पत्थर का हो गया? बच्चा तो बच्चा। माँ अपनी सारी, अपना दुपट्टा बेच डाले, मगर बच्चे का हुक्म बजा लाना होगा। ऐ ठाकुर! तेरे मन में इतनी भी दया नहीं। तू तो संसार का माता-पिता है।

सीमीं वरी तो जानों लेकिन दिले तो संग अस्त।
दर सीम संग पिनहाँ दीदम न दीदः बूदम॥

अर्थात् ऐ प्यारे! तू तो चाँदी जैसा है, लेकिन हृदय तेरा पत्थर का

है। हाय! चाँदी के भीतर पत्थर छिपा है, ऐसा तो मैंने कभी न देखा था।

ऐ परमेश्वर! यह प्यारा भोला बच्चा कह रहा है कि दूध पी लो, और तू नहीं पीता। बच्चे ने सोचा कि शायद आँख मीचने से ठाकुर दूध पियें, उसने आँखें मीच लीं। मगर उंगलियों के बीच से कभी-कभी देखने लगता है कि अभी पीने लगे या नहीं। पर उसने नहीं पिया। बच्चे ने सोचा, शायद जीभ हिलाने से पिये। बरबराने लगा। मगर उसने फिर नहीं पिया। लड़के को रात की थकावट थी और भूखा भी था, एक साथ तीन घंटे बीत गये, मगर ठाकुरजी नहीं पसीजे। हाय भगवान्! राम को भी ऐसे ठाकुर पर क्रोध आता है। लड़का रोने और बिलबिलाने लगा। रोते-रोते गला बैठ गया, आवाज नहीं निकलती। सारा खून आँसू बनकर निकल आया। मगर ठाकुरजी ने दूध नहीं पिया। आखिर लड़के को गुस्सा आ ही गया। यह आत्मा कमजोर को नहीं मिलती। दुर्बल की दाल नहीं गलती। यह लड़का देखने में तनिक सा था, मगर इसमें बल बड़ा था। बल क्या था, दृढ़ता और विश्वास। यह विश्वास की आँधी गजब की आँधी है। हट जाओ वृक्षो मेरे आगे से, हट जाओ नदियो मेरे मार्ग से, उड़ जाओ पहाड़ो मेरे समक्ष से। यह विश्वास, यह यकीन, यह निश्चय, यही सच्चा बल है। कहते हैं, फरहाद में यही बल था। मारता है कुल्हाड़ा, पहाड़ गिर रहे हैं। विश्वासवाले जब चलते हैं, तो दुनिया को एक दम में हिला सकते हैं। इस लड़के में भी यही बल था। किसी ने कभी इसको बर्ता नहीं। पर यों ही कह उठते हैं कि यह गप है। इस लड़के का बल इसको खींचे लाता है।

असर है जज्बे-उल्फत में तो खिंच कर आ ही जायँगे।
हमें परवाह नहीं हमसे अगर वह तन के बैठे हैं॥

लड़के ने एक तलवार पकड़ ली और उसको गले पर रख कर कहता है, "अगर तुम दूध नहीं पीते, तो हम भी नहीं जियेंगे, जियेंगे तो तेरी खातिर, नहीं तो नहीं जियेंगे।"

मरना भला है उसका जो अपने लिए जिये।
जीता है वह जो मर गया हो तेरे ही लिए॥

अगर अमेरिका में मनोविज्ञान-शास्त्र (Psychology) के सम्बन्ध में ऐसे अनुभव किये गये हैं कि मेज़ घोड़ा हो जाय तो (ज़रा अपने यहाँ की भी कहानी मान लो) यह भी सम्भव है। जिस समय लड़का गले पर छुरी रख रहा था, तो एकदम से, नहीं मालूम आकाश से या बालक के हृदय से, वह मूर्तिमान् ईश्वर सशरीर होकर आ बैठा। लड़के को गोद में ले लिया और हाथ से दूध का प्याला उठाकर दूध पीने लगा। यह दृश्य देखकर बच्चा रोते-रोते हँसने लगा। जब देखा कि वह सारा दूध पिये जाता है, तो एक थप्पड़ मारकर कहने लगाः— "कुछ मेरे लिए भी छोड़ो।" यह वह लड़का है जिसकी आँख का पर्दा बहुत ही मोटा था। उसको ईश्वर का ज्ञान न था। मगर पर्दा मोटा हो या पतला; प्रेम, चित्त-शुद्धि, सच्चापन, विश्वास वा निश्चय वह चीज है कि एक बार तो उसको सरका ही देता है। जब एक छोटे से लड़के ने यह कर दिखाया तो धिक्कार है पुरुष को !

कीड़ा जरा सा कि जो पत्थर में घर करे।
इंसान वह क्या जो न दिले-दिलबर में घर करे॥
सिजदए-मस्ताना अम बाशद नमाज़।
दर्दे-दिल बाओ बुवद क़ुरआने मन॥

अर्थात् मस्ताना सिज़्दह (झुकना) मेरी नमाज़ है और इसके साथ दिल का दर्द मेरा कुरान है।

सच्ची नमाज यह है कि मारे मस्ती के लड़खड़ा रहा हो, कभी इधर गिरता हो, कभी उधर। एक माला मे एक दम में हजार मालाओं का असर होता है, मगर दिल से माला जपी जाय तब तो! तिब्बत मे एक चक्र है जिसमें सैंकड़ों मालायें एकदम से घूम जाती है। अगर एक बार ईश्वर का नाम लेते समय प्रत्येक बाल की ज़बान एक साथ ही बोल उठे, तो ऐसे एक बार जो जबान से निकलता है वह उसको हजार दिलों से जरब दे आता है। तात्पर्य यह है कि जो निकले, हृदय से निकले, अन्तःकरण से निकले।

स्यालकोट मे राम के एक मित्र थे, जिन्होंने जीवन भर में नमाज नहीं पढ़ी। यहाँ जो मुसलमान लोग हैं, वे मेरी बात को बुरा न मानें। बच्चे में पूर्ण प्रेम होता है जिससे वह माँ को चपत मारता है, उसकी चोटी खींचता है। स्यालकोट में चोर बहुत थे, उनको पकड़ने वा बन्द करने के लिए वारबर्टन साहब को भेजा गया। पुलीस का वह एक नामी अफसर था। उसने वहाँ जाकर ऐसा प्रबन्ध किया कि नीच जातियों की तीन बार हाज़िरी ली जाती थी जिससे चोरी थोड़ी बहुत बन्द हो गई थी। एक दिन शुक्रवार को सब लोग नमाज पढ़ने जा रहे थे। लोगों ने एक मस्त शेख से पूछा, तुम क्यों नही जाते? उन्होंने कहा, लोगों ने चोरी की है, इसलिए हाज़िरी देने जाते हैं; मैंने चोरी नहीं की। शरीर चोरी का माल है, जो लोग इस शरीर को चुरा बैठे हैं अर्थात् खुदी में डूबे रहते हैं, वह यह खयाल करते हैं कि मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, मैं मुसलमान हूँ। हाँ, एक बार शेख़ जी ने नमाज़ पढ़ी; मगर इस निश्चय से:—

सिजदे में सर झुकाऊँ तो उठना हराम है।
सिजदे में गिर पड़ूँ तो फिर उठना मुहाल है॥
सर को उठाऊँ क्योंकर हर रग में यार है॥

नमाज़ पढ़ रहे थे। सिजदे को सर झुकाया। मगर नहीं उठा। प्राण छूट गये। यह नमाज़ पढ़ना है। मुसलमान के अर्थ हैं इसलामवाला—निश्चयवाला। नामदेव के हृदय में उस समय निश्चय था, इसलाम था, और सचाई थी। जिसने ईश्वर को एक वार सशरीर कर दिखाया। गड़रिये के हृदय में भी सच्चा इसलाम था। वही निश्चय था, वही विश्वास था। इसीलिए परमेश्वर ने मूसा को झिड़का—

तू वराए-वस्ल करदन आमदी।
नै वराए फ़स्ल करदन आमदी॥

मी रसी दर कावा ज़ाहिद न रवद अज़ राहे-तरी।
ज़ुहदे-खुश्के-सौमे तौ वे दीदए—गिरियाँ अवस॥

अर्थात् (ऐ मूसा!) तू तो (मुझसे) अभेद कराने के लिए (दुनिया में) आया था, न कि भेद कराने के लिए।

ऐ ज़ाहिद (तपस्वी)! तू कावे तो पहुँचता है (मगर) तरी की राह से नहीं जाता है। सूखे रोज़े (व्रत) और परहेज़गारी (तप) आँसू-भरी आँखों के विना व्यर्थ हैं।

सूखी नमाज़, सूखी माला, सूखा जप, सूखा पाठ जिनमें न आँसू टपके, न हृदय हिले, ऐसी खुश्की के रास्ते तू मक्का को जाता है, लोग तरी के रास्ते से जल्दी पहुँचते हैं। (अगर इस अवसर पर विषय इधर का उधर हो जाय, तो कुछ आश्चर्य नहीं।)

चुनी ताक़त कुजा दारम कि पैमां रा निगेहदारम्।
बिया ऐ साक़ी ओ विशकन व यक पैमाना पैमां रा॥

अर्थात् मैं कब ऐसी शक्ति रखता हूँ कि वादे को सामने रक्खूँ (अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहूँ), ऐ साकी (मस्ती की शराब पिलानेवाले)! आ, और एक पैमाने (प्याले) से पैमाँ (प्रतिज्ञा, वादे) को तोड़ दे।

इन दो दृष्टांतों में मोटा पर्दा उठ गया। अब एक और दृष्टांत लीजिये, जिसमें पर्दा पतला था और उठ गया। पंजाब में बाबा नानक हुए हैं, वह भी सबकी तरह दूसरे दर्जे (तवैबाहं) के थे। एक ज़माने में मोदीख़ाने में नौकर थे। उस समय कुछ ठग साधु बनकर उनके पास आये। उन्होंने अन्न भर-भरकर उनको देना आरम्भ किया। ऊपर से उनको गिनते जाते थे, लेकिन हृदय में कुछ और ही विचार था।

इश्क के मकतब में मेरी आज बिस्मिल्लाह है।
मुँह से कहता हूँ अलिफ दिल से निकलती आह है॥

मस्ती ही इस पार्थिव पूजा में काम कर रही है। वह ऊपर से तो दो, तीन, चार, पाँच, सात कहते जाते थे, मगर हृदय में इन गिनतियों का कुछ ध्यान नहीं। जब वह तेरह तक पहुँचे, सब भूल गये, और उन पर एक आत्म-विस्मृति की अवस्था आ गई। अब उन्होंने तेरह से यह कहना शुरू किया—तेरे हो गये, हो गये। बारह और तेरह। तेरा और तेरा। भर-भरकर टोकरे फेंकते जाते थे और तेरा-तेरा कहते जाते थे। यहाँ जो कुछ है, तेरा ही है और सब तेरे ही हैं। यह कहकर, देहाभिमान से रहित होकर भूमि पर गिर पड़े। ज़बान बंद हो गई, मगर हर रोयें से यह आवाज़ निकल रही थी कि "मैं तेरा हूँ।" इस दृश्य का प्रभाव यह हुआ कि वे बने हुए साधु ठगे गये। यद्यपि वे स्वयं चोर थे, लेकिन परमेश्वर ने उनको चुरा लिया। वह सब चोरों का चोर है। ठगों पर यह दशा ऐसी छा गई कि वे भी तेरा-

तेरा कहने लगे। यह वह दृष्टांत है जिसमें साक्षात्कार को दृष्टि से पर्दा उठ गया है, लेकिन क्षण भर के लिए।

अब एकाध दृष्टांत "मै तू हूँ" का और दिया जायगा। आत्मानुभव की दृष्टि से बहुत लोग हैं जिन्होंने इस मञ्जिल को तय किया है। दो प्रकार का पढ़ना होता है। राम जब कालेज में था तो इसका हाथ बहुत तेज चलता था। राम की परीक्षा हुई। पर्चा बहुत लम्बा था। उसमें सोलह प्रश्न थे, जिनमें आठ प्रश्नों के हल करने की शर्त थी। मगर राम ने सब सवाल हल कर डाले और कापी पर लिख दिया कि इनमें कोई आठ देख लिये जायँ। पर और विद्यार्थी इतना तेज नहीं लिख सकते थे। इन सोलह प्रश्नों के उत्तर उनके मस्तिष्क में तो थे, मगर नखों में नहीं उतरे थे। इसी तरह से बहुत लोगों ने इसको भी क्रियात्मक रूप से नहीं जाना है। इसी प्रकार राम दूसरा दृष्टांत यह देगा कि वह नखों में उतर आ सकता है। अरव में मोहम्मद साहब से पहले लोग जंगली थे। अब हम विस्मित होते हैं कि मोहम्मद साहब ने कैसी योग्यता से इन जंगली लोगों को एकत्र कर लिया। इनके मिलाने का एक कारण यह था कि इनको इकट्ठा करके ईश्वर के निकट लाना था। राम ने जापान में दो जनरिक्षा (गाड़ी) वालों में असवाव पर लड़ाई होते देखी। दोनों में से हरएक हमको अपनी 'रिक्षा' में विठाना चाहता था। जव उनकी आँखें परस्पर लड़ीं तो दोनों हँस पड़े। उस समय राम को विश्वास हुआ कि आत्मा आख में रहता है।

जव आँखें चार होती हैं मुरव्वत आ ही जाती है।

इसी तरह जब जबान एक होती है तो प्रेम हो जाता है। जब ईश्वर के निकट एक जबान होकर प्रार्थना करते हैं तो मिलाप हो ही जाता है।

पहला शब्द 'ओम्' है, जो बच्चा भी बोलता है। बीमारी में ओं ओं कहकर ही धीरज होता है। जब बच्चे प्रसन्न होते हैं तो उनके मुंह से भी ओ ओ निकलता है। यह प्रकृति का नाम है। इस पर किसी का ठेका नहीं है। कुरान में अलिफ लाम जब आता है, तो वह 'ओम' ही है। जैसे जलाल-उलद्दीन, कमाल-उलदीन में लकार नहीं पढ़ी जाती। जरा देर के लिए सब 'ओम्' बोल दो (निदान, थोड़ी देर के लिए सबने उच्च स्वर से 'ओम्' का उच्चारण किया जिससे खुला मैदान गूँज उठा।)

ऋषीकेश के पास का जिक्र है कि गंगा के इस पार बहुत साधु रहते थे और उस पार एक मस्त रहता था। उसके रगो-रेशे में (अनलहक) शिवोऽहं बसा हुआ था। रात दिन यह आवाज आया करती थी—"शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं।" एक दिन वहाँ एक शेर आ गया। और साधु इस पार से देख रहे थे कि शेर आया और उसने महात्मा की ओर रुख किया। वह महात्मा शेर देखकर उच्च स्वर से कह रहा था—"शिवोऽहं, शिवोऽहं।" उसकी धारणा में यह जमा हुआ था कि यह शेर मैं ही हूँ, सिंह मैं ही हूँ। स्वयं केसरी के शरीर में स्वर भर रहा हूँ "शिवोऽहं, शिवोऽहं।" वन-राज ने आकर इनके कंधे को पकड़ लिया तो वह (महात्मा) आनन्द के साथ सिंह के रूप में नर-मांस का स्वाद ले रहे थे और आवाज़ निकल रही थी "शिवोऽहं. शिवोऽहं।" दीवाली में खाँड के खिलौने बनते हैं। खाँड के हिरन, और खाँड के शेर। अगर खाँड का हिरन अपने आप को नाम रूप रहित विशेषण के साथ समझे कि मैं हिरन हूँ तो क्या यह कहेगा कि खाँड का शेर मुझको खा रहा है। यदि वह अपने आपको खाँड मान ले

तो खाँड़ का मृग कह सकता है कि खाँड़ के रूप में मैं ही इधर हिरन और उधर शेर हूँ। इसी तरह जब तुम जानों कि तुम्हारी असलियत क्या है। वह इस खाँड़ के अनुरूप ईश्वर का स्वरूप है। अत. इस खाँड़ के शेर की दशा में तुम ईश्वर की हैसियत से यह कह सकते हो कि मैं इधर हिरन और उधर शेर हूँ।

पगड़ी पाजामा दुपट्टा अँगरखा, ग़ौरसे देखा तो सब कुछ सूत था।
दामनी तोड़ी तो माला को गढ़ा, पर निगाहे-हक़में वह भी थी तिला॥

प्यारे! यह महात्मा वह दृष्टि रखते थे। जिस समय सिंह खा रहा था उस समय वह क्या-क्या स्वाद ले रहे थे। आज नर-रक्त हमारे मु ह लगा। टाँग खाई तो भी "शिवोऽहं, शिवोऽहं" मुँह से निकला। शेर भी चिल्ला रहा है "शिवोऽहं, शिवोऽहं।" पर्दा पहले ही पतला था, मगर सरकाया गया।

सिकन्दर जब भारतवर्ष में आया और उसने देखा कि जितने देश मैंने जीते, सबसे अधिक सच्चाईवाले बुद्धिमान् और रूपवान् भारतवर्ष में ही देखे। उसने कहा, इस भारतवर्ष के सिर अर्थात् तत्त्व-वेत्ताओं और ज्ञानियों को देखना चाहता हूँ। सिकन्दर को सिंध के किनारे ले गये। वहाँ एक अवधूत बैठे थे। सिकन्दर सारे संसार का सम्राट्; वहाँ लँगोटी भी नहीं। सामना किस ग़ज़ब का है। सिकन्दर में भी एक प्रताप था। मगर मस्त की निगाह तो यह थी —

शाहों को रोब और हसीनों को हुस्नों-नाज।
देखा हूँ, जब कि देखूँ उठाकर नज़र को मैं॥

सिकन्दर पर उस मस्त का रोब छा गया। उसने कहा:— "महाराज! कृपा कीजिये। यहाँ के लोग हीरे को गुदड़ी में लपेट कर रखते हैं। पश्चिम में ज़रा-ज़रा सी चीज़ों की बड़ी क़दर की जाती है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें राज-पाट दूँगा"

धन दूँगा, संपत्ति दूँगा, हीरे-जवाहिरात दूँगा, जो कुछ चाहो सब दूँगा, लेकिन मेरे साथ चलो।" महात्मा हँसे और कहा—"मैं हर जगह हूँ, मेरी दृष्टि मे कोई जगह नहीं है। सिकंदर नहीं समझा। उसने कहाः—"अवश्य चलिये।" और वही लालच फिर दिलाया। मस्त ने कहाः—"मुझे किसी चीज की परवा नहीं, मैं अपना फेंका हुआ थूक चाटनेवाला नहीं।" सिकन्दर को क्रोध आ गया और उसने तलवार खींच ली। इस पर साधु खिलखिलाकर हँसा और बोला—"ऐसा झूठ तो तू कभी नहीं बोला था।"

मुझको काटे कहाँ है वह तलवार।

बच्चे रेत मे बैठकर रेत अपने पैरों पर डालते हैं। आप ही घर बनाते है और आप ही ढाते हैं। रेत का क्या बिगड़ा ? जो पहले थी वह अब भी है। प्यारे! इसी तरह उस साधु की दशा थी। यह शरीर उसको बालू के घर की तरह है जो लोगों की कल्पना मे उनकी समझ का घर बना था। मैं तो बालू हूँ। घर कभी था ही नहीं। अगर तुम या जो कोई इस घर को बिगाड़ता है, वह अपना घर ख़राब करता है।

तारे क्या रोशनी से न्यारे हैं।
तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं॥

उत्तर सुनकर सिकन्दर के हाथ से तलवार छूट पड़ी।

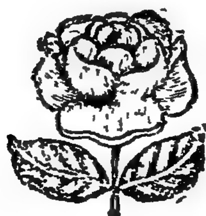
एक भंगिन थी जो किसी राजा के घर मे झाड़ू दिया करती थी। कभी-कभी उसको सोना या मोती इनाम मे मिल जाता था। कभी गिरे पडे उठा लाती थी। उसका एक लड़का था, जो बचपन से परदेश गया हुआ था। जब वह पन्द्रह वर्ष का हुआ तो घर आया। देखा कि उसकी माँ ने झोपड़ी मे लालों का ढेर लगा रक्खा है। उसने पूछाः—"ये चीजे कहाँ से

आईं ?" मेहतरानी ने कहा—"बेटा, मैं एक राजा के यहाँ नौकर हूँ, ये उनके गिरे-पड़े मोती हैं, जिनका यह ढेर है।" लड़का अपने मन में कहने लगा, जिसके गिरे पड़े मोती ऐसे उत्तम हैं, वह आप कैसी रूपवती होगी। यह ख़याल आया था कि उसके मन में प्रेम छा गया और अपनी माँ से कहने लगा कि मुझे उसके दर्शन कराओ। ये तारे-सितारे, यह चन्द्र-सूर्य, ये झलकती हुई नदियाँ, यह सांसारिक रूप-सौंदर्य उस सचाई के गिरे-पड़े मोती हैं। अरे, जिसके गिरे-पड़े मोतियों का यह हाल है तो उसका अपना क्या हाल होगा!

लगाकर पेड़ फूलों के किये तक़सीम गुलशन में।
जमाया चाँद-सूरज को सजाये क्या सितारे हैं॥

जिस समय कन्याओं का विवाह होता है, उसके डोले पर से रुपए-पैसे, अशर्फ़ियाँ न्योछावर करते हैं, और ऐ महात्माओ! तुम उन चीज़ों को चुनो। राम की आँख तो उस दुलहिन के साथ लड़ी। जिसका जी चाहे इन मोतियों को भरे। राम के पास तो जामा भी नहीं है, फिर दामन कहाँ से लावे !!!

ॐ ! ॐ ! ! ॐ ! ! !



ब्रह्मचर्य

(ता० ६ सितम्बर, १६०५ को फ़ैज़ाबाद में दिया हुआ व्याख्यान ।)



जो नर राम नाम लौ नाहीं,
सो नर खर कूकर शूकर सम वृथा जिये जग माँहीं ।
ओ३म ! ओ३म् !! ओ३म् !!!
तुझे देखें तो औरों को किन आँखों से हम देखें ।
यह आँखे फूट जाये गर्चि इन आँखों से हम देखें ॥
जिन अर्गन[1] होते चाह चली खर[2] कूकन की धिक्कार उसे ।
जिन खाय के अमृत वाञ्छा रही लिद पशुअन को, धिक्कार उसे ।
जिन पाय के राज को इच्छा रही चक्की चाटन की, धिक्कार उसे ।
जिन पाय के ज्ञान को इच्छा रही जग विषयन की, धिक्कार उसे ।
ओ हो हो हो ! ! !

जीता तो वही है, जो सत् में, नारायण में वा राम में रहता-सहता, चलता-फिरता और श्वास लेता है । जिन्दगी तो यही है । आप कहेंगे कि तुम बस आनंद ही आनंद बोलते हो, संसार के काम काज कैसे होंगे, और दुःख दर्द कैसे मिटेंगे, परन्तुः—

हर जा सुल्तां खेमा जद गौगा न मानद आम रा ।

अर्थ— जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा लगाया, वहाँ साधारण लोगों का शोर न रहा ।

जहाँ पर सत्, प्रेम वा नारायण, का निवास है, जिस हृदय

---

(१) एक प्रकार का बाजा । (२) गधे की आवाज़ ।

में हरिनाम वा ब्रह्म बस जाय, तो वहाँ शोक, मोह, दुःख, दर्द आदि का क्या काम ? क्या राजाधिराज के खेमे के सामने लौंडी बुची कोई फटक सकती है ? सूर्य जिस समय उदय हो जाता है, तो कोई भी सोया नहीं रहता, पशुओं की भी आँखें खुल जाती हैं, नदियाँ जो बर्फों की चादरें ओढ़े पड़ी थीं, उन चादरों को फेंक कर चल पड़ती हैं, उसी प्रकार सूर्यों का सूर्य आत्मदेव जब आपके हृदय में निवास करता है, तो वहाँ कैसे शोक, मोह और दुःख ठहर सकते हैं ? कभी नहीं, कदापि नहीं। दीपक जल पड़ने से पतंगे आप हो आप उसके आसपास आना शुरू हो जाते हैं। चश्मा जहाँ वह निकलता है, प्यास बुझाने वाले वहाँ स्वयं जाने लग पड़ते हैं। फूल जहाँ खुद खिल पड़ा, भँवरे आप ही आप उधर खिच कर चल देते हैं। उसी प्रकार जिस देश में धर्म वा ईश्वर का नाम रोशन हो जाता है, तो संसार के सुख वैभव और ऋद्धि-सिद्धियाँ आप ही खींची हुई उस देश में चली आती हैं। यही क़ुदरत का क़ानून है, यही प्रकृति का नियम है। ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

बेशक, राम को आनन्द के अतिरिक्त और बात ही नहीं आती। बादशाह का खेमा लग जाने पर चोर चकार नहीं आने पाते। उसी तरह आनन्द का डेरा जम जाने से शोक और दुःख ठहर ही नहीं सकते। इसलिए आनन्द के सिवाय राम से और क्या निकले ? ओ३म्, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

परन्तु आनन्द का डेरा डालने से पहले ज़मीन का साफ़ कर लेना आवश्यक है। इसलिए आज राम, जिसके यहाँ आनन्द की बादशाहत के सिवाय कुछ और है ही नहीं, झाड़ू लेकर झाड़ने बुहारने का काम कर रहा है। जिस तरह दूध या किसी और अच्छी वस्तु को रखने के लिए बरतन का साफ कर

लेना जरूरी है, इसी तरह आनन्द को हृदय मे रखने के लिए हृदय का शुद्ध कर लेना भी आवश्यक है। सो आज राम इस सफाई का अर्थात् चित्त-शुद्धि का यत्न बतलायगा। लोग कहते हैं कि घी खाने से शक्ति आ जाती है, किन्तु जब तक ज्वर दूर न हो जाय, घी अपथ्य ही अपथ्य है। कड़वी कुनैन या चिरायता या गिलोय खाये बिना ज्वर दूर न होगा, अर्थात् जब तक कि मन पवित्र और शुद्ध न होगा, ज्ञान का रंग कदापि न चढ़ेगा।

ओरा ब चश्में-पाक तवां दीद चूँ हलाल,
हर दीदा जल्वगाहे-आँ माह पारा नेस्त।

अर्थः—विशुद्ध नेत्र से तू उस प्रियतम को द्वितीया के चन्द्रोदय के समान देख सकता है, परन्तु सबके नेत्र उसका दर्शन नहीं करा सक्ते।

जब राम पहाड़ों पर था, तो उसने एक दिन एक मनुष्य को देखा कि गुलाब का एक सुन्दर पुष्प वह नाक तक ले गया और चिल्ला उठा। उसमें क्या था? इस सुन्दर फूल मे एक मधु-मक्खिका बैठी थी, जिसने उस पुरुष की नाक की नोक में एक डंक मारा; इसी कारण से वह चिल्ला उठा, और मारे दुःख के व्याकुल हो गया, और पुष्प हाथ से गिर पड़ा। इसी तरह समस्त कामनाये और विषय-वासनायें देखने मे उस गुलाब के फूल की तरह सुन्दर और चित्ताकर्षक प्रतीत होती हैं, किन्तु उनके भीतर वास्तव में एक विषयी भिड़ बैठी है, जो डंक मारे बिना न रहेगी। आप समझते हैं कि हम सुन्दर सुन्दर पुष्पों (संसार के पदार्थों) और विलासों को भोग रहे हैं, किन्तु वास्तव में वह विष, जो उनके अन्दर है, आपको भोगे बिना न रहेगा। संसार के लोग जिसको आनन्द या स्वाद कहते हैं, वह अपना जहरीला असर उत्पन्न किये बिना भला कब रह सकता है?

हाय, आज भीष्म पितामह के देश में ब्रह्मचर्य पर दो बातें कहनी पड़ती हैं, उस भीष्म को ब्रह्मचर्य तोड़ने के लिए ऋषि-मुनि और सौतेली माँ, जिसके लिए उसने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली अर्थात् प्रण किया था, उपदेश करती है कि तुम "ब्रह्मचर्य तोड़ दो ; राज-मंत्री, नगर-जन, ऋषि-मुनि सब आग्रह करते हैं कि तुम अपना व्रत छोड़ दो। तुम्हारे विवाह करने से तुम्हारे कुल का वंश बना रहेगा, राज बना रहेगा इत्यादि इत्यादि।" किन्तु नवयुवा भीष्म यौवनावस्था में, जिस समय विरला ही कोई ऐसा युवक होता है कि जिसका चित्त बाह्य सौन्दर्य और चित्ताकर्षक रंग-राग के झूठे जाल में न फँसता हो, उस समय यौवनपूर्ण भीष्म अथवा शूरवीर भीष्म यूँ उत्तर देता है "तीनों लोक को त्याग देना, स्वर्ग का साम्राज्य छोड़ देना, और उनसे भी कुछ बढ़कर हो उसे न लेना मंजूर है, परन्तु सत् से विमुख होना स्वीकार न करूँगा। चाहे पृथ्वी अपने गुण (गन्ध) को, जल अपने स्वभाव (रस) को, प्रकाश अपने गुण (भिन्न-भिन्न रंगों का दिखलाना) को, वायु अपने गुण (स्पर्श) को, सूर्य अपने प्रकाश को, अग्नि अपनी गरमी व उष्णता को, चन्द्र अपनी शीतलता को, आकाश अपने धर्म (शब्द) को, इन्द्र अपने वैभव को, और यमराज न्याय को छोड़ दें, परन्तु मैं सत्य को कदापि नहीं छोड़ूँगा।

तीनों लोकों को करूँ त्याग और वैकुण्ठ का राज्य छोड़ दूँ,
पर मैं नहीं छोड़ता सत् का मेराज[1]।
पंच तत्त्व, चंद्रमा, सूर्य, इन्द्र और यमदेव,
दे छोड़ खासियत अपनी मगर सत् है मेरा सरताज[2]।

(१) सीढ़ी, मार्ग। (२) मुकुट।

हनुमान का नाम लेने और ध्यान करने से लोगों में शौर्य और वीरता आ जाती है। हनुमान को महावीर किसने बनाया? इसी ब्रह्मचर्य ने। मेघनाद को मारने की किसी में शक्ति न थी। मर्यादा पुरुपोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने भी यह मर्यादा दिखलाई कि मैं स्वयं राम हूँ, किन्तु मैं भी मेघनाद को नहीं मार सकता। उसको वही मार सकेगा कि जिसके अन्तःकरण मे बारह वर्ष तक किसी प्रकार का मलिन विचार न आया हो। और वह लक्ष्मणजी थे। जिन-जिन लोगों ने पवित्रता अर्थात् चित्त की शुद्धि को छोड़ा, उनकी स्थिति खराब होने लगी। विजय उस मनुष्य की कभी नहीं हो सकती, जिसका हृदय शुद्ध नहीं। पृथ्वीराज जब रण-क्षेत्र को चला, जिसमें यह सैकड़ों वर्ष के लिए हिन्दुओं की गुलामी शुरू हो गई, लिखा है कि चलते समय वह अपनी कमर महारानी से कसवा कर आया था। नैपोलियन जैसा युद्धवीर जब अपनी उन्नति के शिखर से गिरा, अड़ड़ धम। लिखा है कि जाने से पहले ही वह अपना खून (अपना घात) आप कर चुका था। खून क्या लाल ही होता है? नहीं, नहीं, सफेद भी होता है। अर्थात् उस रण-क्षेत्र से पहली शाम को वह एक चाह मे अपने तई पहले ही गिरा चुका था। कुमार अभिमन्यु जैसा चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य के समान तेजस्वी, अद्वितीय नवयुवक जब उस कुरुक्षेत्र की भूमि में अर्पण हुआ, और उस युद्ध में काम आया, कि जहाँ से भारत के क्षत्री शूरवीरों का बीज उड़ गया, तो युद्ध से पहले वह अभिमन्यु क्षत्रिय वंश का बीज डालकर आ रहा था। राम जब प्रोफेसर था, उसने उत्तीर्ण और अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की नामावली बनाई थी, और उनके भीतर की दशा तथा आचरण से यह परिणाम निकला था,

कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों या उसके कुछ दिनों पहले विषयों में फँस जाते थे, वे परीक्षा में प्रायः फेल अर्थात् असफल होते थे, चाहे वे वर्ष भर श्रेणी में अच्छे क्यों न रहे हों। और वे विद्यार्थी जिनका चित्त परीक्षा के दिनों में एकाग्र और शुद्ध रहा करता था, वे ही उत्तीर्ण और सफल होते थे। बाइबिल में शूरवीरता में अति प्रसिद्ध साम्सन (Samson) का दृष्टान्त आया है। मगर जब उसने स्त्रियों के नेत्रों की विषमयी मदिरा को चखा, तो उसकी समस्त वीरता और शौर्य को उड़ते ज़रा देर न लगी। एक वीर नर ने कहा है:—

"My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure.
I never felt the kiss of love,
Nor maiden's hands in mine."

TENNYSON.

दस ज्वानों की मुझमें है हिम्मत।
क्योंकि दिल में है इफ़्फ़त व असमत॥

अर्थः—दस युवकों की मुझमें शक्ति है, क्योंकि मेरा हृदय पवित्र है। कामासक्त होकर न मैंने कभी किसी स्त्री को चुम्बन किया, और न किसी तरुणी का हस्त-स्पर्श किया।

जैसे तेल बत्ती के ऊपर चढ़ता हुआ प्रकाश में बदल जाता है, वैसे ही जिस शक्ति की अधोमुख गति है, यदि ऊपर की तरफ बहने लग पड़े, अर्थात् ऊर्ध्वरेतस् बन जाय, तो विषय-वासना रूपी बल ओजस् और आनन्द में बदल जाता है। अर्थ-शास्त्र (Political Economy) में बहुधा आप सज्जनों ने पढ़ा होगा कि पदार्थ-विज्ञान-वेत्ताओं के सिद्धान्त से स्पष्ट फलितार्थ

होता है और जिसमें यह दिखलाया गया है कि किसी देश में जन संख्या का बढ़ जाना और भलाई का स्थिर रहना एक ही समय में असम्भव है, एक दूसरे के विरुद्ध है। अगर बग़ीचा गोड़ा न जाय, और पेड़ों की काट-छाँट न की जाय, तो थोड़े ही दिनों में बाग़ जंगल हो जायगा, सब रास्ते बन्द हो जायँगे। इसी तरह जातीय सुस्थिति (अमन) और वैभव को स्थायी रखने के लिए नैतिक-पद्धति (ethical process) जिसको हक्सले (Huxley) ने उद्यानपद्धति (horticultural process) से वर्णित किया है, वर्ताव में लाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में संख्या को किसी विशिष्ट मर्यादा से अधिक न बढ़ने देना उचित होता है, चाहे यह विदेशगमन (emigration) के द्वारा हो, चाहे संतान के कम पैदा करने से। जब सीधी तरह से कोई बात समझ में नहीं आती, तो डंडे के जोर से सिखलाई जाती है। सभ्यता-हीन लोगों में पहले पशुओं की तरह माँ बहन का विचार (विवेक) न था, किन्तु शनैः शनैः वे इस नियम को समझने लगे और माँ-बहन इत्यादि निकट के सम्बन्धियों में विवाह का रिवाज बन्द कर दिया। कुछ आचार-विचारों को पाशव-वृत्ति और पाशव-व्यवहार का नाम देकर तुच्छ मान लिया जाता है, किन्तु न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य की अपेक्षा पशु अधिक शुद्ध और पवित्र हैं, तथापि साथ ही साथ वे आचार-विचार पशुओं को बदनाम करने के योग्य भी हैं। कारण यह है कि यद्यपि मनुष्यों की अपेक्षा पशु ब्रह्मचर्य का अधिक पालन करते हैं, तथापि सन्तति धड़ाधड़ बढ़ाते चले जाते हैं, जिसका परिणाम लड़ाई-भिड़ाई और जीवन में सतत युद्ध-कलह (struggle for existence) होता है। पशुओं की सन्तति केवल लड़ मरने और अशक्तों के नाश होने से तथा

बलवानों के जीवित रहने के कारण स्थायी रहती है। खेद है उन मनुष्यों पर, जो न केवल पशुओं की तरह सन्तति उत्पन्न करते जाने में विचारहीन हैं, वरन् पशुओं से बढ़कर वक्त बेवक्त अपना सफ़ेद ख़ून (वीर्य) क्षणिक आनन्द के लिए बहा देने को कटिबद्ध हैं। जिस समय हम लोग अर्थात् आर्य लोग इस देश मे आये, उस समय हमको ज़रूरत थी कि हमारी सन्तति और संख्या अधिक हो, इसलिए विवाह के समय इस प्रकार की प्रार्थना की जाती थी कि इस पुत्री के दस पुत्र हों। परन्तु इन दिनों दस पुत्रों की इच्छा करना ठीक नहीं है। तुम कहते हो कि मरने के बाद तुम्हें स्वर्ग में पुत्र ही पहुँचायेंगे। परन्तु अब तो जीते जी ये बच्चे, जिन्हें तुम पेट भर रोटी भी नहीं दे सकते, तुम्हारे दु:ख, आपत्ति अर्थात् नरक के कारण हो रहे हैं। प्यारो ! उधार के पीछे नक़द को क्यों छोड़ते हो ? इस तरह का प्रश्न अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से गीता में किया था कि पिण्ड कौन देगा और पितृ किस प्रकार स्वर्ग में पहुँचेंगे। कृष्ण भगवान् ने जो उत्तर दिया है उसको भगवद्गीता के दूसरे अध्याय मे ४२ से लेकर ४६ श्लोक तक अपने अपने घरों में जाकर देखिये।

भगवन् ! स्वर्ग कोई मुक्ति नहीं है, स्वर्ग के बाद तो फिर यहाँ आना पड़ता है। स्वर्ग के विषय में क्या ही ख़ूब कहा है: —

"जन्नत परस्त जाहिद कब हक़ परस्त है ;
हूरों पे मर रहा है, शहवत परस्त है।"

अर्थात् जो वैकुण्ठ की कामना रखता है, वह ब्रह्म का उपासक कैसे कहा जा सकता है ? वह तो अप्सराओं की इच्छा रखता है, और कामासक्त है।

प्यारो ! अगर तुम लोकसंख्या के कम करने में यत्न न करोगे, तो प्रकृति अपनी जंगली-पद्धति (wild-process) को

कोम में लायगी, अर्थात् काट-छाँट करना शुरू कर देगी, जैसा कि महर्षि वसिष्ठ जी का कथन है— महामारी, दुर्भिक्ष, भूकम्प तथा युद्ध के द्वारा काट-छाँट शुरू हो जायगी। यदि गृहकलह, दुर्भिक्ष व प्लेग आदि नामंजूर हैं, तो पवित्रता, ब्रह्मचर्य, हृदय की शुद्धि और निर्मल आचार-व्यवहार को बर्त्ताव में लाओ। देश में प्रेम और जातीय एकता कदापि स्थायी नहीं रह सकती, जब तक कि लोक संख्या की वृद्धि और जमीन की पैदावार (धान्य की उत्पत्ति) परस्पर एक दूसरे के अनुरूप न रहें। संसार में कोई देश ऐसा नहीं है जो निर्धनता में हिन्दुस्तान से कम हो और लोक-संख्या में इससे अधिक। ऐसी दशा में झगड़े-बखेड़े और स्वार्थ-परायणता भला क्योंकर दूर हो सकते हैं, और मेल-मिलाप और एकता क्योंकर स्थायी रह सकती है? दो कुत्तों के बीच में रोटी का टुकड़ा डाल कर कहते हो कि लड़ो मत। भला—यह कैसे सम्भव है? ऐसी दशा में प्रेम और एकता का उपदेश करना मानो लेक्चरबाजी की हँसी उड़ाना और उपदेश का मखौल करना है। एक गोशाला में दस गायें हों, और चारा केवल एक के लिए हो, तो गायें ऐसी ग़रीब, शान्त-स्वभाव और अवाक् पशु भी आपस में लड़े मरे बिना नहीं रह सकतीं। भला, भूखे मरते भारतवासी कैसे प्रेम और एकता को स्थायी रख सकते हैं? विज्ञान-शास्त्र में यह वार्त्ता सिद्ध हो चुकी है कि किसी पदार्थ की समतोल-स्थिति (equilibrium) के लिए जरूरी है कि एक अणु या अंश की अन्तर्गत गति के लिए इतनी जगह अवश्य हो कि दूसरे अणु की गति या व्यापार में बाधा न पड़ने पाये। अब भला बताओ कि जिस देश में एक आदमी के पेट भर खाने से बाकी दस आदमी आधे तृप्त या भूखे रह जायँ, उस देश में भिन्न-भिन्न

व्यक्तियाँ एक दूसरे के सुख में बाधा डालने वाली क्यों न हों ? और ऐसे देश की शान्ति, समतोल-अस्थिति (equilibrium) कैसे स्थायी रह सकती है ? क्या तुम भारतवर्ष को कलकत्ता की काल-कोठरी (Black Hole) बनाये बिना नहीं रहोगे ? जो वस्तु निकम्मी हो जाती है, वह इस लेम्प के समान नीचे उतार दी जाती है, जो अभी उतार दिया गया है *। आखिर कब समझोगे ? मनुष्य-बल को, अपने पुरुषत्व को इस प्रकार नष्ट मत करो जिससे तुम्हारी भी हानि हो और समस्त देश की भी। इसी शक्ति को ब्रह्मानन्द और आत्मबल में बदल, दो। दुनिया का सबसे बड़ा गणितशास्त्री सर आइज़क न्यूटन (Sir Isaac Newton) ८० साल से अधिक आयु तक जिया और वह ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करता था। दुनिया का प्रायः सबसे बड़ा तत्त्वविचारक कैंट (Kant) बहुत बड़ी आयु तक जिया और वह भी ब्रह्मचारी था। हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) और स्वीडनबर्ग (Swedenberg) जैसे संसार के विचारों को पलटा देनेवाले ब्रह्मचारी ही हुए हैं। कुछ अँगरेज़ी वर्त्तमान पत्रों ने यह ख़्याल उड़ा रक्खा है कि ब्रह्मचर्य का जीवन आयु को घटाता है। विचारपूर्वक देखने से मालूम होता है कि यह परिणाम पैरिस और एडिनबरा में कुछ वर्षों की जन-संख्या की वृद्धि की रिपोर्टों से निकाला गया था। परन्तु जिसमें किञ्चित् भी विवेक शक्ति है, यदि विचार करे तो देख सकता है कि पैरिस और एडिनबरा में उन्हीं लोगों का विवाह नहीं होता जो बीमार हों, कङ्गाल हों, उद्योगहीन

---

* एक लैंप जो मेज़ पर रक्खा था और जिसकी चिमनी काली पड़ गई थी, उसी समय मेज़ से नीचे उतार दिया गया था; उसीका यहाँ उल्लेख है।

हों, या अन्य रीति से घर घर भटकते फिरते हों। इसलिए इन देशों में अविवाहित और एकाकी जीवन अकाल मृत्यु का कारण नहीं, बल्कि अकाल मृत्यु ही अविवाहित जीवन का कारण होता है। और ऐसे अविवाहित लोग जो आत्मिक और बौद्धिक व्यापार से शून्य हैं, ब्रह्मचारी नहीं कहला सकते। बस, ब्रह्मचर्य का जन-संख्या के कारण से विरोध करना नितान्त अनुचित है।

अब हम दो एक अमेरिका देश के ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करने वालों का हाल सुना कर यह विषय समाप्त करेंगे। हमारे भारत की विद्या को विदेशियों ने प्राप्त करके उससे लाभ उठाया, और हम वैसे ही कोरे के कोरे रह जाते हैं, यह कैसे शोक की बात है! "हमारे पिता ने कूप खुदवाया है" इसके कहने से हमारी प्यास नहीं जायगी। प्यास तो पानी के पीने से ही जायगी। इसी तरह शास्त्रों पर आचरण करने से आनन्द होगा। अमेरिका के सबसे बड़े लेखक एमर्सन (Emerson) का गुरु, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला थोरो (Thoreau) भगवद्गीता के विषय में इस प्रकार लिखता है—"प्रति दिन मैं गीता के पवित्र जल से स्नान करता हूं। यद्यपि इस पुस्तक के लिखने वाले देवताओं को अनेक वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन इसके बराबर की कोई पुस्तक अभी तक नहीं निकली है। इसकी खूबी और महत्व हमारे आज कल के ग्रंथों से इस क़दर बढ़चढ़ कर है कि कई बार मैं खयाल करता हूँ कि शायद इसके लिखे जाने का समय नितान्त निराला समय होगा।" पाताल लोक में अर्थात् अमेरिका मे उपनिषद्, भगवद्गीता और विष्णुपुराण का सबसे पहले प्यारे थोरो ने प्रचार (introduce) किया। सर टामस रो (Sir Thomas Roe) आदि जो

यूरोप से हिन्दुस्तान में आये, वे उन पवित्र ग्रन्थों के लातीनी अनुवादों को यहाँ से यूरोप में ले गये, और फ्रांस से यह शख्स थोरो उन अनुवादों को अमेरिका में ले गया। इन पुस्तकों के अनुवादों को फ़िरंगियों ने फ़ारसी भाषा से लातीनी भाषा में किया था, क्योंकि उस समय यूरोप की शिक्षा लातीनी भाषा में थी, और प्रायः इसी भाषा में ग्रन्थ लिखे जाते थे। अगर सच पूछो तो वेदान्त का झण्डा पहले पहल इसी पुरुष (थोरो) ने अमेरिका में गाड़ा। एक दिन जंगल में सैर करते हुए इससे एमर्सन ने पूछा कि इण्डियन अर्थात् अमेरिका के असली बाशिन्दों के तीर कहाँ मिलते हैं ? उसने साधारणतः अपना हर समय का वही उत्तर दिया—"जहाँ चाहो।" इतने में ज़रा झुका और एक तीर मार्ग से उठाकर झट दे दिया और कहा—"यह लो।" एमर्सन ने पूछा कि देश कौन सा अच्छा है, तो उत्तर दिया कि "अगर पैरों तले की पृथ्वी तुमको स्वर्ग और वैकुण्ठ से बढ़कर नहीं मालूम देती, तो तुम इस पृथ्वी पर रहने के योग्य नहीं।" उसके द्वार हर समय खुले रहते थे, और रोशनी और वायु को कभी रोक-टोक न थी। एमर्सन कहता है कि उसके मकान की छत में एक भिड़ों का छत्ता लगा हुआ था, और भिड़ों और शहद की मक्खियों को मैंने उसके साथ चारपाई पर बेखटके सोते देखा है। वे मगर इस समदर्शी को कभी दुःख नहीं पहुँचाती थीं।

साँप उसकी टाँगों से लिपट जाते थे, परन्तु उसे किञ्चित् परवा नहीं। काटते तो कैसे, क्योंकि उसके हृदय से दया और प्रेम की किरणें फूट रही थीं। और वह तो व्यालभूषण बना हुआ था। और शंकर के समान इस तरह का अनुभव रखता था। जिस पुरुष को संसार के नख़रे टख़रे और क्रोध-कटाक्ष

नहीं हिला सकते, वह संसार को ज़रूर हिला देगा। अमेरिका का एक और महापुरुष वाल्ट व्हिटमन (Walt Whitman) नामक अभी वर्तमान में हुआ है, जो "स्वतंत्रता के युद्ध" (War of Independence) के दिनों में स्वतंत्रता के गीत गाता फिरा करता था। उसके मुख से प्रसन्नता टपकती थी, और हाथों से श्रम करने का स्वभाव रखता था। लड़ाई में उसका यही काम था कि पीड़ितों की मरहम पट्टी करे, प्यासों को पानी और भूखों को रोटी दे, और लोगों के दिलों में हिम्मत और साहस को पैदा कर दे, तथा आनन्द से गीत गाता फिरे। उसकी आँखों से आनन्द बरसता था। उसकी आवाज़ से ख़ुशी टपकती थी, जिस तरह कुरुक्षेत्र की रणभूमि में कृष्ण भगवान्, और भूत-पिशाचों के बीच में शिव भगवान् विचरते थे, इसी तरह यह महापुरुष अमेरिका के उस रणक्षेत्र में बेधड़क घूमता फिरता था। उसने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम 'लीव्ज़ आफ दी ग्रास" (Leaves of the grass) है, जिसके पढ़ते पढ़ते मनुष्य आनन्द से गद्‌गद हो जाता है।

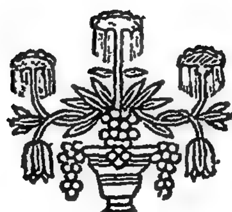
ओ३म् ! आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

डटकर खड़ा हूँ ख़ौफ़ से खाली जहान में।
तसकीने-दिल भरी है मेरे दिल में, जान में॥
सूँघे ज़मां मकां हैं मेरे पैर मिस्ले-सग।
मैं कैसे आ सकूँ हूँ क़ैदे-बयान में॥



खुश खड़ा दुनिया की छत पर हूँ तमाशा देखता।
गाह बगाह देता लगा हूँ वहिशियों की सी सदा॥
बादशाह दुनियाँ के हैं मोहरे मेरी शतरंज के।
दिल्लगी की चाल हैं, सब रंग सुलह-व-जंग के॥
रक़्से-शादी से मेरे जब काँप उठती है जमीं।
देखकर मैं खिलखिलाता क़हक़हाता हूँ वहीं॥

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!



विश्वास या ईमान

[ता० १० सितम्बर, १९०५ को फ़ैज़ाबाद के विक्टोरिया-हाल में दिया हुआ व्याख्यान ।]

[स्वामीजी ने फ़रमाया कि व्याख्यान से पूर्व हम सबको ध्यान कर लेना ज़रूरी है । हम इस बात का ख़याल करें कि हम सब में एक ही आत्मा व्यापक है, हम सब एक ही समुद्र की तरंगें हैं, एक ही सूत्र (धागे) में हम सब माला के मोतियों के समान पिरोये हुए हैं । इस पर कुछ समय तक शान्ति आच्छादित हो गई । सबने मौन धारण कर लिया और श्रीस्वामीजी तथा श्रोतागण इस ध्यान में डूब गये । तत्पश्चात् ऊँचे स्वर से "ओ३म्" का उच्चारण करके स्वामीजी ने अपनी वक्तृता इस प्रकार आरम्भ की ।]

वनस्पति-विद्या (Botany) की यह एक साधारण कहावत है कि जून के महीने मे वृक्ष फूल नहीं देते, और अपने पत्तों को इस प्रकार शोभायमान करते हैं कि उनके सामने फूल मात हो जाते हैं। चाहे रंगत की दृष्टि से देखो, चाहे सुगंध की दृष्टि से । रंग और गंध दोनों ही में वे पत्ते किसी दशा में न्यून नहीं होते, वरन् बल और शक्ति की दृष्टि से वे पुष्पों से भी श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि उनमें पुष्पों की कोमलता और निर्बलता के स्थान पर बल और शक्ति होती है । इसका कारण क्या है ? इसका कारण वही "ब्रह्मचर्य" है । अर्थात् पुष्पों का विवाह होता है, मगर वे पौधे, जो फूलते नहीं, ब्रह्मचारी रहते हैं ।

जब यह बात वृक्षों में पाई जाती है, तो क्या मनुष्यों मे इसका विकास नहीं होता ? हमारी दृष्टि सत् अर्थात् परमेश्वर में

इस प्रकार जमनी चाहिए कि उसके सामने इस जगत् के रूब के सब पदार्थ मिथ्या दिखाई देने लगें।

हूर[1] पर आँख न डाले-कभी शैदा[2] तेरा।
सबसे बेगाना[3] है ऐ दोस्त शिनासा[4] तेरा॥

राम इसी अवस्था का नाम अभ्यास, निश्चय, श्रद्धा, विश्वास या इसलाम बतलाता है।

असभ्य जातियों के विषय में कहा जाता है कि रात्रि को वे जाड़ों के मारे ठिठुर जाते हैं। अगर किसी ने उनको कम्बल दे दिया तो ओढ़ लिया, फिर जहाँ सवेरा हुआ और धूप निकली, जिसने चाहा एक मिसरी की डली देकर उनसे कम्बल ले लिया। रात हुई, अब फिर काँप रहे हैं। फिर दूसरी रात कम्बल पाया। और दिन में किसी ने एक ज़रा सी मिसरी की डली का लालच देकर उनसे कम्बल ले लिया। तात्पर्य, अब उनको मिसरी की डली के सामने वह रात का जाड़ा जो अब सामने मौजूद नहीं है, याद नहीं आता। इसी तरह ऐसे लोग भी हैं जो अपने आप को असभ्य नहीं कहते, मगर वह उस चीज़ को नहीं मानते जो उनकी आँखों के आगे इस समय मौजूद नहीं, उसमें विश्वास नहीं रखते। उस वस्तु का मानना जो उनकी आँखों के आगे मौजूद नहीं है, विश्वास निश्चय, यक़ीन, या इसलाम (faith) कहलाता है।

एक बार असुरों के साथ देवताओं का युद्ध हुआ। देवता लोग बल में असुरों से कम थे। उनके गुरु बृहस्पति ने चार्वाक का मत असुरों को सिखाया। इस मत के ऐसे ही सिद्धांत हैं कि खाओ, पियो, और चैन करो (Eat, drink and be

---

१ स्वर्ग की अप्सरा। २ प्रेमासक्त। ३ निराला। ४ पहचाननेवाला।

merry.) और किसी ऐसी वस्तु को, जो तुम्हारे सामने न हो, मत मानो।

जिस जाति में भलाई, सत् या ईश्वर का विश्वास, श्रद्धा या इस्लाम नहीं है, वह जाति विजय नहीं पा सकती। एक महाशय ने राम से आज यह शिकायत की कि विश्वास ने भारतवर्ष को चौपट कर दिया। वह महाशय विश्वास का अर्थ नहीं जानते हैं। लो, आज राम विश्वास के बारे में कुछ बोलेगा। अमेरिका का एक सुविख्यात देशभक्त कवि वाल्ट ह्विटमेन (Walt Whitman) हुआ है जिसका ज़िक्र राम ने प्रायः किया है और जिसके नाम पर आज सैकड़ों बल्कि हज़ारों मनुष्य, जिन्होंने उसके आनंदमय वाक्यों को पढ़ा है, उसी तरह जान देने को तैयार हैं, जिस तरह ईसाई लोग हज़रत ईसा पर, मुसलमान लोग मुहम्मद साहब पर, और हिंदू लोग भगवान् राम या कृष्ण पर। वह अपनी पुस्तक "लीव्ज़ आफ ग्रास" (Leaves of Grass) में इस तरह लिखता है कि आकाश पर तारे और भूमि पर कण केवल धर्म, विश्वास से ही चमकते हैं। इस अमेरिकन लेखक का उल्लेख राम इस कारण से करता है कि लोगों का खयाल है कि युरोप और अमेरिका वाले सबके सब नास्तिक होते हैं, अर्थात् ईश्वर को नहीं मानते। भला क्या यह संभव है कि बिना ईश्वर में विश्वास किये हुए कोई देश उन्नति कर सके? हाँ, निस्संदेह वे ऐसे ईश्वर को नहीं मानते जो मनुष्यों से अलग, संसार से परे कहीं बादलों के ऊपर बैठा हुआ है। कहीं उसको वहाँ ज़ुकाम न हो जाय! और जिस देश में भ्रम वा अविश्वास फैल जाता है अर्थात् जहाँ संशय घर कर लेता है, उस देश की दशा नष्ट हो जाती है।

खोदते अन्त में एक अत्यन्त जीर्ण भाला भूमि में से निकला। वे लोग उस भाले को ईसा वाला भाला मान कर जी तोड़ कर लड़ने लगे, और अन्त में वे विजयी हुए। मरते समय उस बूढ़े मनुष्य ने पादरी के आगे यह स्वीकार (confession) किया कि "मैंने योरुसलम की लड़ाई में भाले वाली कहानी गढ़ दी थी कि जिससे विजय हो।" चाहे कुछ हो, मगर वह बात उस समय काम कर गई। इस कहानी का वह अंश जिससे लोगों के हृदयों में यकीन (निश्चय) बढ़ गया, विश्वास (faith) है, और कहानी मत (creed) है। विश्वास की शक्ति ही जीवन है। राम ऊपर के अक़ीदे (मत) पर जोर नहीं देता, वह तो भीतर की आग आप ही में से निकाला चाहता है।

लोग कहते हैं कि युरोप के बड़े बड़े लोग नास्तिक हैं। ब्रैडला (Bradlaw) और हरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) यद्यपि ईसाइयों और मुसलमानों या अन्य धर्म वालों के ख़ुदा को नहीं मानते थे, मगर उनमें यक़ीन और विश्वास अवश्य था और उन लोगों के चाल-चलन आप लोगों के पण्डितों, धार्मिक उपदेशकों और व्याख्याताओं से कहीं श्रेष्ठ थे।

ब्रैडला यद्यपि रामायण नहीं जानता था, मगर उसका हृदय प्रेम से भरा था। आपके धार्मिक लोग अपने प्रेम को किसी मत विशेष या देश में ही परिच्छिन्न कर देते हैं, मगर उसका चित्त इङ्गलिस्तान में ही परिच्छिन्न (घिरा हुआ) न था बल्कि भारत के हित में भी अपना रक्त अर्पण कर रहा था। वह प्रकृति के अटल नियम पर विश्वास रखता था। इसी विश्वास या ईमान की भारतवर्ष को आवश्यकता है। यह गाली है कि तुम बे-ईमान हो, अर्थात् तुम्हारा ईमान नहीं है, और ईमान

अदृश्य वस्तु पर विश्वास लाने का नाम है, और यही धर्म विश्वास या इसलाम है, और इसके बिना कोई उन्नति नहीं कर सकता। आर्किमेडीज़ (Archamedes) यह कहा करता था कि "If I get a point I shall overturn the whole world." अगर मुझको एक बिंदु (केन्द्र) खड़े होने को मिल जाय, तो मैं संपूर्ण संसार को उलट दूँ।

राम बतलाता है कि वह स्थिर बिंदु तुम्हारे ही पास है। यदि तुम उस आत्मदेव को, जो दूर से दूर और निकट से निकट है जान लो, तो वह कौन सा काम है जिसको तुम नहीं कर सकते।

वह कौन सा उकदा[1] है जो वा[2] हो नहीं सकता,
हिम्मत करे इंसान तो क्या हो नहीं सकता।

इस विश्वास को हृदय में स्थान दो और फिर जो चाहो सो कर लो। क्योंकि अनन्त शक्ति का स्रोत तो तुम्हारे भीतर ही मौजूद है।

हक्सले (Huxley) का कथन है कि अगर तुम्हारी यह तर्कशक्ति और बुद्धि या विवेकशक्ति घटनाओं के जानने में सहायता नहीं करते तो—

बरीं अक़्लो दानिश व बयाद गरीस्त।

अर्थात् इस बुद्धि और विवेक शक्ति पर तुझे रोना चाहिए।

ऐसे तर्क को बदल दो, अक्ल को फेंक दो, मगर घटनाओं को आप बदल नहीं सकते।

आत्मा अर्थात् भीतर वाली शक्ति पर विश्वास रक्खो। टिटिहरी के मन में विश्वास आ गया। उसने साहस पर कमर बाँधी। समुद्र से सामना किया और विजय पाई।

---

१ कठिन ग्रंथि, भेद, २ स्पष्ट नहीं हो सकना।

एक कहानी है कि टिटिहरी के अण्डे-बच्चे समुद्र बहा ले गया। उसने विचार किया कि समुद्र आज मेरे अण्डे-बच्चे बहा ले गया, तो कल मेरे और सजातियों के बच्चों को बहा ले जायगा। इससे उत्तम है कि समुद्र का विनाश कर दिया जाय। ऐसा सोच कर समुद्र का जल उन पक्षियों ने अपनी चोंचों में भर भर के बाहर फेंकना आरंभ किया, और विपत्ति-काल में भी अपने उत्साह को भङ्ग नहीं किया।

इतने में एक ऋषि जी वहाँ आये और चोंचों से समुद्र का पानी खाली करते देखकर कहा कि यह क्या मूर्खता का काम कर रहे हो, क्या समुद्र को खाली कर सकते हो? क्या अकेला चना भाड़ को फोड़ सकता है? इस मूर्खता के काम को छोड़ो। इस पर टिटिहरी ने उन्हें उत्तर दिया कि महाराज! आप देवर्षि होकर मुझको ऐसे नास्तिकपने का उपदेश करते हैं? आप हमारे शरीरों को देख रहे हैं; हमारे आत्मबल को नहीं देखते। (यही उत्तर कागभुसुण्ड को महाराज दत्तात्रेय जी ने दिया था और कहा—"यार! तुम तो कौवे ही रहे। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि सदैव हाड़ और चाम पर जाती है। शरीर तो मैं नहीं हूँ। मैं तो वह हूँ जिसका अन्त वेद भी नहीं पा सकते।" आत्मदेव तो वह है जो कभी भी अन्त होनेवाला नहीं है।) इस उत्तर को सुन कर ऋषि जी महाराज होश में आये और समुद्र पर क्रोध करके बोले कि अरे! इसके अण्डे-बच्चे क्यों बहा ले गया? इस पर समुद्र ने झट अण्डे-बच्चे फेंक दिये, और कहा मैं तो मखौलबाज़ी (परिहास) करता था।

इस कहानी में अमर और अजर आत्मदेव में यक़ीन का होना तो विश्वास, मज़हब या इसलाम है, बाक़ी सब कहानी

मत या अक़ीदा है, किन्तु राम तो विश्वास ही को उत्तेजना देता है; और बात से उसे सरोकार नहीं।

अकेले फ़रहाद ने नहर को काट कर बादशाह के महलों तक पहुँचा दिया। ये सब घटनायें हैं। आप उन तसवीरों को देख सकते हैं जो फरहाद ने पहाड़ों पर नहर काटते समय बनाई थीं। विश्वासवान् पुरुषों के सिवाय दूसरे का यह काम नहीं। जिसको इस बात का विश्वास है कि मेरे भीतर आत्मा विद्यमान है, तो फिर वह कौन सी ग्रन्थि है जो खुल नहीं सकती! फिर कोई शक्ति ऐसी नहीं जो मेरे विरुद्ध हो सके। सूर्य हाथ बाँधे खड़ा है और चन्द्रमा प्रणाम के लिए शिर झुका रहा है। जरा देखिये, अकेले तो रामचन्द्र और उनके साथ एक भाई और सीता जी को समुद्र चीर कर वापस लाना चाहते हैं। क्या यह काम सहज है? नाव नहीं, जहाज नहीं, मगर वाह रे साहसी वीर! तेरी सेवा करने को वन के पशु भी उद्यत हैं। बन्दर जैसे चंचल पशु भी आपकी सेवा मे उपस्थित हैं। पक्षी भी आपकी सेवा के लिए प्राण-विसर्जन किये देता है। गिलहरियाँ भी चोंच में बालू भर भर कर समुद्र पर पुल बाँधने का प्रयत्न करतीं और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करती हैं। अगर हरएक के हृदय में वही श्रद्धा उत्पन्न हो जाय जो राम में थी तो—"कुमरियाँ आशिक हैं तेरी सरव बन्दा है तेरा।" वाली अवस्था सब की हो जाय। अगर इस बात का विश्वास नहीं आता कि "मैं वह ही हूँ" तो इसका निश्चय अवश्य होना ही चाहिए कि मेरे भीतर वही है। "जब मेरे भीतर वही है, तो मैं सबका स्वामी हूँ और जो चाहूँ सो कर सकता हूँ।" यह ख़याल बड़ा ज़बरदस्त है। बस, हर समय यह ख़याल हृदय मे रखिये जिससे वह भीतर की शक्ति प्रकट होने लगे। अमेरिका

और इंगलैंड के बहुतेरे अस्पतालों में सरकारी तौर से ऐसी चिकित्सायें जारी हो गई हैं जिनमें केवल विचार की शक्ति से रोगी अच्छा कर दिया जाता है, और बहुतों ने इस बात की सौगंध खाई है कि हम आयु भर औषधि-सेवन नहीं करेंगे, और अगर कोई बीमारी हो जायगी तो केवल विचार की शक्ति से उसको भगा देंगे। यह शक्ति यक़ीन है, यही विश्वास है।

आज कल की संकल्प विद्या (Will Power) ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि मेज़ की जगह आपको घोड़ी दिखाई दे। क्या आपने इस कहावत को नहीं सुना कि जेम्स (James) साहब का डाक्टर पाल (Paul) बन गया। हक़ीक़त वही है जो विश्वास की आँखों से दिखाई दे। यदि देखना है तो उस आत्मा को देखो।

एक पिन्सल की कला को देखो जिससे हज़ारों मनुष्य पल रहे हैं, और राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ रही है। रेल वालों को लाभ, डाकवालों को लाभ। इस कला की हक़ीक़त (वास्तविकता) कहाँ है ? इसके एक छोटे से भीतरी विकार (chemical action) पर है जो दिखाई नहीं देता। भीतर से आत्मा बराबर निर्विकार है।

जापान और अमेरिका की उन्नति का रहस्य उनकी बाहर की सम्पत्ति और वैभव के देखने से नहीं मालूम होता, वरन् उन देशों के उदय का कारण उनके भीतर का परिवर्तन है। वह क्या है ? यक़ीन या विश्वास। सब जातियों और राष्ट्रों की उन्नति का मूल कारण उनकी आत्मा है, शरीर तो केवल आवरण (खोल) की तरह है।

तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं को, चाहे तेंतीस लाख करोड़ देवताओं को भले ही माना करो, परन्तु जब तक तुम में

भीतरी शक्ति जोश न मारेगी, तब तक तुम्हारा कुछ भला न होगा। जिस समय तुम्हारे भीतर का आत्मबल-जागेगा, तो सारे देवता भी अपनी सेवा के लिए हाथ जोड़े खड़े पाओगे। अभी तुम उनको मानते हो, फिर वे तुमको मानेंगे।

> क़ुतुब[1] अगर जगह से टले तो टल जाय।
> हिमालय, बाद[2] की ठोकर से भी फिसल जाय॥
> अगर्चि बहर[3] भी जुगनू की दुम से जल जाय।
> और, आफ़ताब[4] भी क़ब्ले-उरूज[5] ढल जाय॥
> कभी न साहबे-हिम्मत का हौसला टूटे।
> कभी न भूले से अपनी, जबीं[6] पै बल आय॥

इसी का नाम विश्वास, यक़ीन और परमेश्वर में भरोसा रखना है। जिस हृदय में यह विश्वास है, वह बाहरी वस्तुओं की परवाह नहीं करता। वह घर ही क्या जिसमे दीपक न हो, वह ऊँट ही क्या जो बे-नकेल हो. और वह दिल ही क्या जिसमें विश्वास न हो।

कोई प्राणी या मनुष्य ही क्या जिसको ईश्वर, सत् (Truth) की हक़ीकत में विश्वास न हो। जब विपत्ति आती है, तो बलिदान की आवश्यकता होती है। हिंदू. मुसलमान, यहूदी, ईसाइयों सब से यह बलिदान की प्रथा प्रचलित है। एक बेचारा पशु (बकरा) काट डाला या अग्नि में डाल दिया और कह दिया, यह बलिदान है। क्या बलिदान इसी का नाम है ?—नहीं नहीं। "बिन लाँडेके, बरात भला किस काम की।" सच्चा बलिदान तो यह है :—

> कर नित्य करें तुमरी सेवा, रसना तुमरो गुण गावे।

---

१ ध्रुव। २ वायु ३ समुद्र। ४ सूर्य। ५ उदय काल से पूर्व ६ ललाट

प्यारे ! बलिदान तो यह है कि सचमुच परमेश्वर के हो जायँ और उसी सचाई के सामने इन संसार के भोगों और इन्द्रियों[1] की कामनाओं (temptations) को कुछ असलियत न रहे।

Take my life and let it be
Consecrated Lord, to Thee,
Take my heart and let it be
Full saturated, Love, with Thee.

Take my eyes and let them be
Intoxicated, God, with Thee
Take my hands and let them be
For ever sweating, Truth, for Thee.

प्राण महा प्रभु, स्वीकृत कीजे, निज पद अर्पित होने दीजे,
अन्तःकरण नाथ ले लीजे, निज से उसे प्रेम भर दीजे।
स्वीकृत कीजे नेत्र हमारे, निज से मतवाले कर प्यारे,
लीजे सत् प्रभु हाथ हमारे, सदा करे श्रम हेतु तुम्हारे।

(इस कविता में 'प्रभु' शब्द से आकाश में बैठा हुआ, मेघ-मंडल से परे, जाड़े के मारे सिकुड़ने वाला, अदृश्य ईश्वर से तात्पर्य नहीं है। प्रभु का अर्थ तो है सर्व, अर्थात् समस्त मानव जाति।)

तुम काम किये जाओ, केवल परमेश्वर के निमित्त। खुदी (अभिमान) और खुदग़र्ज़ी (स्वार्थपरता) ज़रा न रहने पावे। यदि तुम अहंता को भी परमेश्वर के निमित्त बलिदान कर दो, अर्थात् अहंभाव को मिटा दो, फिर तो तुम आप में आप मौजूद हो।

लोग कहते हैं कि ऐसी दशा में हमसे काम नहीं हो सकेंगे।

जल-ज्ञान (Hydrology) में एक लैम्प का ज़िक्र आया है जिसका आकार इस प्रकार होता है और उसमें जो हिस्सा नीचे रहता है वह तेल से भरा होता है और ऊपर का (काला) भाग ठोस होता है। ज्यों-ज्यों जलने से तेल खर्च होता जाता है वह ठोस भाग नीचे को गिरता जाता है, अर्थात् तेल का विशेष गुरुत्व (Specific gravity) ठोस के बराबर होता है।

अब इस उदाहरण में तेल को बाहरी काम काज समझो, और दूसरे आधे अंश को यक़ीन, विश्वास, इसलाम या श्रद्धा कहो।

लोग कहते हैं कि हमको अवकाश नहीं। किंतु जान्सन (Johnson) के कथनानुसार समय तो पर्याप्त है, यदि भली भाँति काम में लगाया जाय। "Time also is sufficient if well employed" क्या यह तुम्हारे हाथ और पैर काम करते हैं? नहीं, नहीं; वरन् तुम्हारे भीतर का आत्मबल यक़ीन और विश्वास है जो तुम्हारी प्रत्येक नस-नाड़ी में गति और तेज-तप उत्पन्न कर देता है।

अरे यारो! आत्मदेव को, जो अकाल-मूर्त्ति है, उसको काल अर्थात् समय से बाँधा चाहते हो? इसी का नाम नास्तिकता, या कुफ़्र (Atheism) है। हक्सले (Huxley) नास्तिक नहीं है, जैसा तुम समझे हुए हो। वह कहता है कि मैं ऐसे परमेश्वर को मानता हूँ जिसे स्पाईनोज़ा (Spinoza) ने माना है। और बिना सच्चे और भीतर वाले परमेश्वर पर विश्वास लाये हम एक क्षण मात्र भी जीवित नहीं रह सकते।

चू कुफ़्र अज़ काबा बर ख़ेज़द कुजा मानद मुसलमानी।

अर्थात्—यदि स्वयं काबे से ही कुफ़्र (नास्तिकता, अविश्वास) उत्पन्न हो, तो फिर इस्लाम का ठिकाना कहाँ।

परमेश्वर तो आपके भीतर है, जो सर्वत्र विद्यमान और सर्व-द्रष्टा है। यदि प्रह्लाद के हृदय में यह विश्वास होता कि ईश्वर कहीं आकाश पर बैठा हुआ है, तो उसकी जिह्वा से कभी ये शब्द न निकलते—

मो में राम, तो में राम, खड्ग-खंभ में व्यापक राम,
जहँ देखो तहँ राम हि राम।

राम तो कहता है कि—"दस्त दरकार और दिल दर यार हो"। अर्थात् हाथों से हो काम और दिल में राम।

ऐसे ही पुरुष जब कृष्ण भगवान् के मन्दिर में जाते हैं तो अपनी आँखों से आबदार मोती (अश्रु-बिन्दु) उस मनोहर मूर्ति पर न्योछावर किये बिना नहीं रह सकते; और यदि मसजिद में जा खड़े होते हैं, तो संसार से हाथ धोकर ('वज़ू' करके) नमाज़ मस्ताना (प्रेमोन्मत्त प्रार्थना-भक्तिविह्वल स्तुति) पढ़ने लगते हैं, और यदि वे गिरजे में प्रवेश करते हैं तो पवित्रात्मा के सामने देहभाव को सलीब (सूली) पर चढ़ा देते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!



आत्मकृपा

(फर्ज़ ऊला)

[भारतवर्ष में दिया हुआ स्वामी रामतीर्थ जी का व्याख्यान]

श्रुति (वेद) का वाक्य है कि "श्रेय और प्रेय है, और ७ है"। फर्ज़ (कर्त्तव्य, धर्म) कुछ कहता है, किन्तु गर्ज़ (स्वार्थ-कामना) और तरफ खींचती है। श्रेय, फ़र्ज़ या ड्यूटी (duty) तो कहते हैं—"दे दो—त्याग"। लेकिन प्रेय या गर्ज़ तरगीब देती है—"ले लो. यह हमारा हक है, अधि-कार है, राइट (right) है"। दुनिया में अपने राइट (हक़) या अधिकार पर जोर देना तो साधारण और सुगम है, किन्तु अपने धर्म या फ़र्ज़ को पूरा करने पर ज़ोर देना कठिन और निरस मालूम देता है। वस्तुत. विचार करें तो फर्ज़ और गर्ज़ में वही सम्बन्ध है जो वृक्ष के बीज को उसके फल के साथ होता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि फल तो सब लोग खाना चाहते हैं, किन्तु बीज को बोने और उसके पालन-पोषण के परिश्रम से भागा चाहते हैं। बात तो यों है कि जब हम लोग अपनी ड्यूटी (duty) पूरा करने पर ज़ोर देते चले जायँ, तो हमारे राइट हमारे हक, हमारे अधिकार हमारे पास स्वयं आवेंगे। जब हम लोग केवल अपने अधिकार पर ज़ोर देंगे, अपने राइट, अपने अधिकार फड़कायँगे, तो हम अभागी मुँह तकते ही रह जायँगे, हमारे हक भी झूठे हो जायँगे। प्रकृति का नियम ऐसा ही है।

कहा जाता है कि ड्यूटी अर्थात् ऋण चार प्रकार के हैं। पहला ऋण परमेश्वर की तरफ, दूसरा ऋण मानव-जाति की ओर, तीसरा ऋण देश सेवा का और चौथा

ऋण अपनी ओर। ये सब ऋण अन्त में एक ही ऋण में समा जायँगे। वह एक ऋण क्या है ? जो आपका ऋण अपने आप की ओर है। जो लोग अपना ऋण (क़र्ज़) अपने आप के प्रति पूरी तरह से अदा कर देते हैं, उनके बाक़ी तीनों ऋण (क़र्ज़) अपने आप अदा हो जाते हैं।

कहा जाता है कि कृपा तीन प्रकार की है:—ईश्वर-कृपा, गुरु-कृपा और आत्म-कृपा। ईश्वर-कृपा उस पर होती है जिस पर गुरु-कृपा होती है। गुरु-कृपा उस पर होती है जिस पर आत्म-कृपा होती है। देखिये, एक लड़का जो स्कूल में पढ़ता है, अगर अपने स्वधर्म के निजी कर्तव्य को अच्छी तरह से पूरा न करे, अर्थात् अगर वह आप आत्म-कृपा न करे, तो गुरु-कृपा उस पर न होगी। और जब अपना पाठ अच्छी तरह से याद करे तो गुरु-कृपा उस पर अपने आप होगी, और गुरु-कृपा होने से ईश्वर-कृपा हो ही जाती है।

देश की सेवा वह मनुष्य नहीं कर सकता, जिसने पहले अपनी सेवा नहीं की। जो अपना भी ऋण पूरा नहीं कर सका, वह देश-सेवा क्या ख़ाक करेगा ? जिस किसी ने कोई विद्या प्राप्त नहीं की, कोई कला (हुनर) नहीं सीखी, किसी बात में निपुणता प्राप्त नहीं की, किसी कारीगरी या कला-कौशल में कुशलता प्राप्त नहीं की, और दम भरने लगे देश-प्रेमी होने का तो भला बोलो, उससे क्या बन पड़ेगा ? हाँ, इतना ज़रूर है कि जिसके दिल में सच्चाई भर जाय, वह अधूरा पुरुष भी कुछ न कुछ तो देश-सेवा कर सकता है। देश की सेवा तो कोयला भी जल कर और लकड़ी भी कट कर, नाव बनकर, कर सकती हैं। जब लकड़ी या कोयला भी कट या जल कर देश-सेवा कर सकते हैं, तो वह मनुष्य भी, जिसने कोई विद्या या कला नहीं पढ़ी,

सचाई के ज़ोर से कुछ न कुछ देश-सेवा क्यों नहीं कर सकता? मगर उसकी सेवा की केवल कोयला और लकड़ी की सेवा से समानता की जा सकती है। इसके साथ सचाई से भरा मनुष्य प्रवीणता रहित (अधूरा) कैसे कहला सकता है? सचाई तो स्वयं प्रवीणता (वा निपुणता) है। वह व्यक्ति जिसने अपना ऋण अपने प्रति कुछ भी पूरा किया, और अपने तईं आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के बालकपन की अवस्था से आगे बढ़ा दिया, तो समझना कि उसने कुछ नहीं तो एम० ए० या शास्त्री आदि श्रेणी की योग्यता प्राप्त कर ली। यह व्यक्ति जिस हद (दर्जे) तक आध्यात्मिक या बुद्धि-विषयक बल उत्पन्न कर चुका है, उसी प्रमाण से समाज की गाड़ी को उन्नति की सड़क पर आगे खींच सकता है। यदि ऐसा मनुष्य देश के सुधार का दम न भरे और प्रकट रूप में देश की पूरी सेवा भी न करे, तो भी उसको देखकर और स्मरण करके बहुत से लोग बड़े उत्साह से आ जायेंगे कि हम भी एम० ए० पास करें, हम भी योग्यता पैदा करें। यह मनुष्य अपने आचरण से लोगों को उपदेश कर रहा है, और देश के बल को बढ़ा रहा है।

> दामन-आलूदा अगर ख़ुद हमः हिकमत गोयन्द।
> अज़ स.ख़ुन गुफ़्तने-ज़ेबायश बदाँ चिह् नशवन्द॥
> वाँकि पाकीज़ा दिलस्त अर बिनशीनद ख़ामोश,।
> हमः अज़ सीरते-साफ़ीश, नसीहत शिनवन्द॥

भावार्थ.—दुष्कर्मी अगर स्पष्ट बुद्धिमानी की बातें कहे, उसकी अच्छी बातें कहने से बुरे लोग अच्छे न होंगे। और जो पवित्र हृदय-वाला चुप भी बैठे, सब लोग उसके उत्तम स्वभाव से उपदेश ले लेंगे।

सर आइज़ाक न्यूटन, (Sir issac Newton) जिसको ख़याल भी न था कि मैं स्वदेश और जगत् की सेवा करूँगा,

इस प्रकार विद्या के पीछे दौड़ रहा था कि जिस प्रकार दीपक की ज्वाला (लाट) पर पतंगे। सर आइज़क न्यूटन अपनी तरफ जो ऋण है उसको निभाता हुआ, आत्म-कृपा करता हुआ लोकोपकारक प्रकट हुआ। अगर एक व्यक्ति मैदान में खड़ा होकर दृष्टि फैलावे, तो थोड़ी दूर तक देख सकता है, और कुछ मनुष्यों तक अपनी आवाज पहुँचा सकता है । किन्तु जब वह ऊँचे मीनार या पर्वत की चोटी पर पहुँच जाता है, तो अपनी आवाज चारों ओर बहुत दूर तक पहुँचा सकता है। राम के साथ एक समय कुछ मनुष्य गंगोत्री के पहाड़ पर जा रहे थे। रास्ता भूल गये। झाड़ियों और काँटों से बदन छिल गये। साथियों में से अगर कोई पुकारता तो उसकी आवाज़ दूसरों तक नहीं पहुँच सकती थी, मुश्किल के साथ अन्त में चोटी पर पहुँच कर जब राम ने आवाज दी, तब सब आ गये। इसी तरह से जब तक हम स्वयं नीचे गिरे हुए हैं, दूर की आवाज़ सुनाई नहीं देगी, और जब चोटी पर चढ़कर आवाज़ दें, तो सब के सब सुनेंगे। इस चौकी को जो राम के सामने है, यदि हिलाना चाहें और उसके दूसरी ओर या बीच में हाथ डालें और जोर मारें, तो नहीं हिलेगी, लेकिन नज़दीक से नज़दीक स्थान से हाथ डाल कर हम चौकी को खींच सकते हैं। दुनिया के साथ मनुष्य का सम्बन्ध भी ऐसा ही है।

बनी-आदम अज़ाए-यक दीगरन्द,
कि दर आफरीनश ज़ि यक जौहरन्द ।

भावार्थः—प्रजापति की सन्तान (मनुष्य) परस्पर एक दूसरे के अङ्ग हैं, क्योंकि उत्पत्ति में मूल कारण एक ही है।

समस्त जगत् को यदि तुम हिलाना चाहते हो, तो दुनिया का वह भाग जो अति समीप है, अर्थात् अपना आप, उसको

हिलाओ। अगर अपने आप को हिला दोगे, तो सारी दुनिया हिल जायगी ; न हिले तो हम जिम्मेदार। जिस क़दर अपने आप को हिला सकते हो, उसी क़दर दुनिया को हिला सकते हो। कुछ लोग सुधार (reform) के काम में हज़ारों यत्न करते हैं, रात-दिन लगे रहते हैं, तथापि कुछ नहीं हो सकता। और कुछ ऐसे हैं कि उनके जीते जी या मर जाने के पीछे उनकी याद-गार में, उनके नाम पर, लोग कालेज बनाते हैं, सभायें स्थापित करते हैं, और सैकड़ों सुधार जारी करते हैं, जैसे बुद्ध, शंकर, नानक, दयानन्द इत्यादि। कारण क्या है ? बस, यही कि उक्त महात्मा अपने सुधारक आप बने थे।

यूनान में एक बड़ा गणित-वेत्ता हो गया है, जिसका नाम है आर्कमिडीज (Archemedes)। इसका कहना था कि "मैं थोड़ी सी ताकत से समस्त ब्रह्माण्ड को हिला सकता हूँ, यदि मुझे इसका स्थिर-बिन्दु मिल जाय"। किन्तु उस बेचारे को कोई स्थायी मुकाम (केन्द्र-स्थान) न मिला। प्यारे ! वह स्थायी मुकाम जिस पर खड़े होकर ब्रह्माण्ड को हिला सकते हो, वह स्थिर-बिन्दु आपका अपना ही आत्मा है, वहाँ जम कर, अपने स्वरूप में स्थित होकर जो संचार (हलचल) और शक्ति उत्पन्न होगी, वह समस्त ब्रह्माण्ड को हिला सकती है।

जब एक जगह की वायु सूर्य की गर्मी लेते लेते पतली होकर ऊपर उड़ जाती है, तो उसकी जगह घेरने को स्वतः चारों ओर से वायु चल पड़ती है, और कई बार आँधी भी आ जाती है। इसी तरह जो व्यक्ति स्वयं हिम्मत (दैवी तेज) को लेता लेता ऊपर बढ़ गया, वह स्वाभाविक ही देश में चारों ओर से मतों (सम्प्रदायों) को कई क़दम आगे बढ़ाने का निमित्त कारण हो जाता है।

अब यह दिखलाया जायगा कि क्योंकर अपने आप की ओर अपना ऋण निबहाते हुए हमारा ईश्वर की ओर का ऋण भी पूरा हो जाता है। मुसलमानों के यहाँ को कथा है कि एक कोई सत्य का जिज्ञासु था। ईश्वर की जिज्ञासा में प्रेम का मारा चारों ओर दौड़ता था कि ईश्वर करे कोई ऐसा ब्रह्मनिष्ठ मिल जाय कि जिसके दर्शन से हृदय की आग बुझ जाय, और दिल को ठण्डक पड़े। यूँ ही तलाश करता हुआ हताशा होकर जङ्गल में जा पड़ा कि अब न कुछ खायेंगे, न पियेंगे, जान दे देंगे।

बैठे हैं तेरे दर पे तो कुछ करके उठेंगे,
या वस्ल ही हो जायगी या मरके उठेंगे।

अर्थात् तेरे द्वार पर आ बैठे हैं, अब कुछ करके ही उठेंगे। या एकता हो जायगी या प्राण त्याग कर देंगे।

उस समय के पूर्ण ज्ञानी हज़रत जुनैद थे और उस दिन हज़रत जुनैद दजला नदी में घोड़े को पानी पिलाने जा रहे थे। घोड़ा अड़ता था। दजला की तरफ नहीं जाता था। घोड़े को अड़ता हुआ और बिगड़ा हुआ सा देखकर जुनैद ने जाना कि इसमें भी कोई भलाई होगी। आखिर घोड़े के साथ ज़िद छोड़ दी और कहाः—"चल जहाँ चलता है, चारों ओर मेरे ही खुदा का मुल्क तो है, सब मेरा ही देश है"। घोड़ा दौड़ता हुआ उस जंगल में, ख़ास उसी स्थान पर आ पहुँचा, जहाँ वह बेचारा सच्चा जिज्ञासु प्रेम का मतवाला, इश्क़ का जला हुआ, परमेश्वर का भूखा प्यासा पड़ा था। जुनैद घोड़े से उतरकर उस जिज्ञासु के पास आकर हाल पूछने लगे, और थोड़े ही सत्संग से वह परमात्मा का सच्चा जिज्ञासु माला-माल हो गया। जब जुनैद जाने लगे, तो उस प्यारे से कहा कि "अगर फिर कभी क़ब्ज़ (आत्मिक अजीर्ण) हो जाय और

तुझे ब्रह्मनिष्ठ गुरु की ज़रूरत हो, तो बगदाद में आ जाना। मेरा नाम जुनैद है, किसी से पूछ लेना"। उस मर्द ने जवाब दिया कि क्या अब मैं हुज़ूर के पास गया था? मुझे अब भेद मालूम हो गया। अब मैं आने जाने का कहीं नहीं। अगर आयन्दा ज़रूरत होगी, तो अब की तरह फिर भी चाहे हुज़ूर ख़ुद, चाहे और कोई गरदन से पकड़े हुए घसीटते-घसीटते आवेंगे।

अगर है जज़्बे-उल्फ़त में तो खिंचकर आ ही जायँगे।
हमें परवाह नहीं हमसे अगर वह तन के बैठे हैं।

अर्थात् प्रेमाकर्षण में यदि कुछ प्रभाव है, तो आप ही खिंच कर आ जायँगे। इस बात की परवाह नहीं कि आप तन कर दूर बैठे हैं।

वाह रे आत्म-सत्ता का रसायन!

बेहूदह चरा दर पये ओ मे गरदी,
बिनशीं अगर ओ ख़ुदास्त ख़ुद मी आयद।

* * *

इश्के-अव्वल दर दिले-मशूक पैदा मे शवद,
ता न सोज़द शमा कै परवानह शैदा मे शवद।

* * *

गिर्दे-ख़ुद गरद ग़नी चन्द कुनी तौफ़े-हरम,
रहबरे-नेस्त दरीं राह बिह अज़ किब्लानुमा,

भावार्थ—उस (ईश्वर) के लिए तू व्यर्थ क्यों घूमता फिरता है? बैठ, अगर वह ख़ुदा है, तो ख़ुद आवेगा।

प्रिया के हृदय में प्रथम प्रेम उत्पन्न होता है। जब तक दीपक न जले, पतंग उस पर मोहित कब हो सकता है?

ऐ ग़नी (कवि का उपनाम)! अपने गिर्द तू घूम, काबे की परिक्रमा तू कब तक करेगा? क्योंकि इस मार्ग में इस क़िब्लानुमा पूज्यात्मा के अतिरिक्त और कोई अन्य पथदर्शक नहीं है।

यह है आत्म-कृपा का बल !

"यह हमारे भाग्य में नहीं था," "यह हमारी क़िस्मत में नहीं था," "ईश्वर की इच्छा," "आज कल गुरु नहीं मिल सकता," "अच्छा सत्संग नहीं," "दुनिया बड़ी ख़राब है," इत्यादि ऐसे ऐसे वचन हमारे अन्तःकरण की मलिनता और कायरता के कारण से उठते हैं।

कैसे गिले रकीब के क्या ताने-अक़रबा,
तेरा ही दिल न चाहे तो बातें हज़ार हैं।

अर्थात् विरोधियों की शिकायतें कैसी ? और संबंधियों के उलहने क्या ? जब अपना ही चित्त न चाहे, तो हज़ार बहाने हो जाते हैं।

आपने बीसियों कथायें सुनी होंगी कि किस किस तरह से ध्रुव, प्रह्लाद और अभिमन्यु इत्यादि छोटे छोटे बालकों ने परमेश्वर को बुलाया, प्रकट कर लिया। एक ज़रा सा लड़का नामदेव अपने नाना को ठाकुर पूजन करते हुए देखा करता था। उसके मन में आने लगा कि मैं भी पूजा करूँगा। चुपके-चुपके "ठाकुरजी ठाकुरजी" जपा करता था। उसकी दृष्टि में शालिग्राम की प्रतिमा सच्चे ठाकुरजी थे। जब उसका दाँव लगता, शालिग्राम का मूर्ति के पास आकर बड़ी श्रद्धा से कहा करता था "ठाकुरजी ! भात !" मगर उसे ठाकुरजी को स्नान कराने और पूजा करने की आज्ञा उसका नाना नहीं देता था। एक दिन उसके नाना को कहीं बाहर जाना था, और बिल्ली के भागों छीका टूटा। लड़के ने नाना से कहा "अब तो तुम जाते ही हो, तुम्हारे पीछे मैं ही ठाकुर पूजन करूँगा"। उसने कहा "अच्छा तू ही करना। लेकिन तू तो प्रातःकाल विना हाथ मुँह धोये रोटी माँगता है, तेरा जैसा नादान पूजन क्या करेगा ?

अगर पूजन किया चाहता है, तो पहले ठाकुरजी को खिलाना और फिर स्वयं खाना"। खैर, नाना जी तो इतना कहकर चले गये। रात को मारे प्रेम के बालक को नींद नहीं आई। बच्चा उठ कर अपनी माता से कहता था "प्रात:काल कब होगा? ठाकुर जी का पूजन कब करूँगा?" प्रात:काल होते ही बच्चा गंगा जी पर स्नान के लिए गया, और स्नान के बाद उसकी माता ने ठाकुरजी के सिंहासन को उतारकर नीचे रख दिया, और बच्चे ने मूर्ति को निकालकर गंगाजल के लोटे में झट डुबो दिया। फिर सिंहासन पर बैठाकर माता से दूध माँगने लगा कि "जल्दी दूध ला, जल्दी दूध ला, ठाकुरजी स्नान करके बैठे हैं और उनको भूख लगी है"। उसकी माता दूध का कटोरा लाई। बालक ने ठाकुरजी के आगे दूध रख दिया, और कहने लगा "महाराज पीजिये, दूध पीजिये।" उस परमात्मा ने दूध नहीं पिया। लड़का आँखे बन्द करके धीरे धीरे ओंठ हिलाने लगा और मुँह से 'राम राम' या 'ठाकुर ठाकुर' क' नाम बड़-बड़ाने लगा, इस विचार से कि मेरी इस भक्ति से प्रसन्न होकर तो ठाकुरजी जरूर दूध पी लेंगे। किन्तु बीच-बीच में आँखे खोल खोलकर देखता जाता था कि ठाकुरजी दूध पीने लगे या नहीं। बहुतेरा मंत्र पढ़कर मुँह हिलाया, 'राम राम' 'ठाकुर ठाकुर' कहा, मगर दूध ठाकुरजी ने नहीं पिया। अन्त में दिक़ होकर बेचारा बालक नामदेव मारे भूख, प्यास, रात की घबरा-बट, और निराशा के रोने लगा। ठंडी लम्बी साँस आने लगी। रोम खड़े हो गये। गला रुकने लगा। हिचकियों का तार बँध गया। ओंठ सूख गये। हाय! अरे ठाकुर! आज तेरा दिल पत्थर का क्यों हो रहा है? क्यों नन्हें बच्चे की खातिर दूध नहीं पीता? ऐसे भोले भाले बच्चे से भी कोई ज़िद करता है?

सीमों बरी तो जानां लेकिन दिले तो संगस्त,
दर सीम संग पिनहां दीदम न दीदा बूदम।

भावार्थः—ऐ प्यारे ! तू है तो चाँदी के बदन वाला, लेकिन दिल तेरा पत्थर है। मैंने चाँदी में पत्थर छिपा हुआ पहले कभी न देखा था, पर अब देखा !

हाय ! चाँदी के वदन में पत्थर का दिल कहाँ से आ गया ? बेचारा बच्चा रोता हुआ निढाल हो रहा है। आँखों से नदियाँ बहने लगी। रोते-रोते मूर्च्छा आ गई। लोगों ने गुलाब छिड़का। जब होश आया, लोगों ने समझाना चाहा कि "बस ! अब तुम पी लो, ठाकुरजी नहीं पिया करते, वह केवल वासना के भूखे हैं।" बच्चे में यह अक़्ल (बुद्धि) नहीं आई थी कि परमेश्वर को भी झुठला ले। ठाकुर जी को धोखा देना नही सीखा था। वह नहीं जानता था कि झूठ मूठ भोग लगाया जाता है। बच्चा तो सच्चा था। सदाकत (सचाई) का पुतला था। मचल कर चिल्लाया कि अगर ठाकुरजी दूध नही पीते, तो खाने-पीने या जीने की परवाह हमको भी नहीं।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः (मुण्डक उप०)

"यह आत्मा बलहीन पुरुष को कभी प्राप्त नहीं होता"। हाय ! नन्हे से नामदेव ! तुझ में किस क़दर ज़ोर है ? कैसा आत्मबल है ? इस नन्हें से बच्चे ने वह ज़िद जो बाँधी, तो एक लम्बा सा छुरा निकाल लाया और अपने गले पर रखकर बोला—"ठाकुर जी पियो, ठाकुर जी दूध पियो, नहीं तो मैं नहीं"। छुरा चल रहा था, गला कटने को था, इतने में क्या देखते हैं कि ठाकुर जी एक दम मूर्त्तिमान होकर (प्रत्यक्ष होकर) दूध पीने लगे।

आप लोग कहेंगे कि यह गप है। राम कहता है कि आप

लोगों का विश्वास कहाँ गया? राम अमेरिका में रहकर कालिजों में, अस्पतालों में, अपनी आँखों से ऐसे दृश्य देख आया है कि विश्वास की प्रेरणा (बल) से इस चौकी को जो आपके सामने है, थोड़ा दिखा सकते हैं। मनो-विज्ञान के अनुभव इस प्रकार के प्रयोग को खुल्लमखुल्ला सच्चे सिद्ध कर रहे हैं ; तो क्या सच्चे निष्पाप, पूर्ण भक्त बेचारे नामदेव के विश्वास का बल ठाकुर जी को मूर्त्तिमान नहीं कर सकता था? परमेश्वर तो सर्वव्यापी है, परन्तु आत्मकृपा अर्थात् पूर्णविश्वास वह वस्तु है जिसके प्रभाव से परमेश्वर सातवें—नहीं नहीं—चौदहवें आकाश से , बिहिश्त से, हज़ारवें स्वर्ग से, बैकुण्ठ से, गोलोक से, इससे भी परे से अर्थात जहाँ भी हो वहाँ से खिचकर आ सकता है।

थामे हुए कलेजे को आओगे आप से,
मानोगे जज़्बे-दिल में भला क्यों असर नहीं।

वह कौन सा उकदा है जो वा हो नहीं सकता,
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता।

कीड़ा ज़रा सा और वह पत्थर में घर करे
इन्सों वह क्या जो न दिले-दिलबर में घर करे।

ऐ मनुष्य! तुम्हारे अन्दर वह महान धन और अनन्त शक्ति है कि उसका नियमित विकास (आविर्भाव) ही देश, जगत और परमात्मा तक को प्रसन्न करता है। ऐ नववसन्त के पुष्प! तू अपनी ज़ात (स्वरूप) में प्रसन्न तो हो। इस निज का ऋण पूरा करने से तेरे बाक़ी सब ऋण पूरे हो जायँगे। पक्षी, मनुष्य और वायु तक सब ख़ुश हो जायँगे।

तो खुशी तो .खूबी-ओ-काने .खुशी,
तो चिरा खुद मिन्नते—बादाकशी।

भावार्थ—तू स्वयं आनन्द है, सुन्दर स्वरूप है, और तू आनन्द की खान है, फिर तू सुरा का उपकार अपने ऊपर क्यों लादता है ?

अपना ऋण पूरा करने के साधन

स्काटलैंड के किसी अनाथालय में एक लडका पलता था। बहुधा बच्चों के नियमानुसार यह बच्चा खिलाड़ी और नटखट भी था। एक दिन वह उस अनाथालय से भाग निकला और रास्ते के ग्रामों में रोटियाँ माँग माँगकर गुज़ारा करते हुए लन्दन आ पहुँचा। वहाँ सबसे अधिक संपत्तिवान् लार्ड मेयर (Mayor) के बाग़ मे घूमने लगा। (लार्ड मेयर बहुधा ऐसे धनवान् होते हैं जिनसे अमीर लोग, राजा लोग और बादशाह लोग भी जरूरत के समय क़र्ज़ लिया करते हैं)। यह ग़रीब बच्चा बाग़ में टहल रहा था। एक बिल्ली को उसने दौड़ते देखा। वह उसके साथ खेलने लगा और निरर्थक बातें करने लगा। उसकी पीठ पर हाथ फेरता था, पूँछ खींचता था, और लड़कपन के तरंग में बिल्ली से छेड़खानी करता था। पड़ोस में गिर्जे का घड़ियाल बज रहा था। बच्चा बिल्ली से पूछता था, "यह पागल घड़ियाल क्या बकता है ?" कहो। (पागल इस लिए कि घड़ियाल बहुधा कोई चार बजाकर बन्द हो जाता है, कोई आठ, हद बारह बजाकर तो अकसर रुक जाते हैं, मगर गिर्जे का घड़ियाल बजता ही चला जाता है। पागल की तरह बन्द होता ही नज़र नहीं आता)। बिल्ली बेचारी तो घड़ियाल की आवाज़ को क्या समझती ? लड़का बिल्ली की तरफ़ से .खुद ही जवाब देता है "टन, टन, टन, ह्विट्टिंगटन, ह्विट्टिंगटन," (ह्विट्टिंगटन उस लड़के का नाम था)। घड़ियाल

कहता है "टन, टन, टन, ह्विट्टिंगटन, ह्विट्टिंगटन, लार्ड मेयर आफ़ लन्दन"। ज़रा ख़्याल कीजियेगा, अनाथालय से तो भाग कर आया हुआ यह छोटा सा बालक और अपने स्वप्न कहाँ तक दौड़ा रहा है! घड़ियाल की आवाज़ में भी अपने लार्ड मेयर होने के गीत सुन रहा है। वाह! "टन, टन, टन, ह्विट्टिंगटन, ह्विट्टिंगटन, लार्ड मेयर आफ़ लन्दन"!

इतने में लार्ड मेयर साहब अपने बाग़ में हवाखोरी करते वहाँ आ निकले। बालक से पूछा—"अरे! तू कौन है? और क्या बकता है?" लड़का मस्ती और आनन्द भरा जवाब देता है:— "लार्ड मेयर आफ़ लन्दन, लार्ड मेयर आफ़ लन्दन"। बच्चे पर गुस्सा तो क्या आता, उलटी लड़के की वह स्वतंत्र अवस्था लार्ड मेयर के हृदय में चुभ गई। और स्वाधीनता किस दिल को प्यारी नहीं लगती? लार्ड मेयर ने पूछा, "स्कूल में दाख़िल (प्रवेश) होना चाहता है?" बच्चे ने जवाब दिया, "अगर शिक्षक मारा न करे तो…?" वह लड़का स्कूल में दाख़िल कराया गया। स्कूल में पढ़ते पढ़ते फिर क्रम से कालेज की सब श्रेणियाँ पास करके सम्मान पूर्वक ग्रेजुयेट हो गया। इतने में लार्ड मेयर के मरने का दिन आ गया। उसके कोई संतति न थी। लार्ड मेयर अपनी संपत्ति का बहुत सा भाग इस लड़के को देकर मरा। यह बालक इस संपत्ति को बढ़ाते बढ़ाते एक दिन ख़ुद लार्ड मेयर आफ़ लन्दन हो ही गया। आप लार्ड मेयर की नामावली में इसका नाम पायेंगे।

यह दुनिया और इसका आपके साथ बर्ताव, आपकी हिम्मत और मनोभावों का जवाब है। ह्विट्टिंगटन का बच्चेपन में अपूर्व उत्साह था और उसके दिल के भाव सच्चे और ऊँचे थे। उसको वैसा ही फल क्यों न मिलता? जैसी मति वैसी गति होती है—

"या मतिर्सागतिर्भवेत्"—जैसा दिल में भरोगे वैसा पाओगे। जैसा अपनी विचारभूमि में बोओगे, वैसा काटोगे।

चीन में एक विद्यार्थी बहुत ही ग़रीब था। रात को पढ़ने के लिए उसे तेल भी प्राप्त न होता था। जुगनू को इकट्ठा करके एक पतले मलमल के कपड़े में बाँधकर किताब के ऊपर रख लिया करता और उसकी चमक में पढ़ा करता था। किसी ने कहा कि "इतना परिश्रम क्यों करता है, क्या चीन का वज़ीर हो जायगा?" उसने उत्तर दिया कि "यदि विचारबल के विषय में प्रकृति के नियम सच्चे हैं, तो एक दिन मैं अवश्य वज़ीर हो जाऊँगा।" चीन के इतिहास में देखिये कि एक दिन वह आया कि यही लड़का वज़ीर बन गया।

'तज़किरा आबे-हयात' नाम की पुस्तक में प्रोफ़ेसर आज़ाद ने एक आश्चर्यमय घटना लिखी है। एक दिन लखनऊ में एक शायर (कवि) नवाब साहब, और उसके दीवान व मुसाहिबों (साथियों) को अपनी शेरों (कविता) से प्रसन्न कर रहा था। महल में नवाब साहब विलम्ब से पहुँचे। बेगमों ने पूछा कि विलम्ब क्यों हुआ। नवाब साहब ने फ़रमाया कि कुछ अद्भुत चुटकुले, शेर व सख़ुन सुनते रहे। बेगमों ने कहा कि हमको भी सुनवाइयेगा। दूसरे दिन परदा किया गया, और शायर बुलवाया गया। बेगमें बहुत ही प्रसन्न हुईं और आज्ञा दी कि महल में एक कमरा इसको रहने के लिए दिया जाय। शायर (कवि) भाँप (ताड़) गया कि अगर मैं महल में रहूँगा तो इस विचार से कि मैं बेगमों को देख सकूँगा, नवाब साहब को अच्छा नहीं लगेगा। नवाब साहब को सोच में देख कर शायर ने ख़ुद शिकायत की कि और तो मैं सब बातों में अच्छा हूँ, मगर केवल एक ही बात की कसर है, मुझको बिलकुल दिखलाई

नहीं देता। आँखों से बेकार हूँ।" शायर की यह शिकायत सफल हुई, बहाना ठीक उतरा, नवाब साहब के दिल में जो खटका था वह दूर हो गया, और आज्ञा दे दी कि महल में एक कमरा इसे रहने को दिया जाय। मगर (मलिन-चित्त) शायर झूठ-मूठ यह धोखा दे रहा था कि मैं अन्धा हूँ। दिल में यह बुरी नियत भरी थी कि इस बहाने से बेखटके बेगमों और औरतों को पड़ा झाँकूँ। परन्तु धोखा तो अन्त में अपने आप के सिवा और किसी को भी देना सम्भव नहीं, और बुराई मे सफलता मानो विष भरी मदिरा है।

एक दिन शायर शौच जाना चाहता था। दासी से पानी का लोटा माँगा। उसने कहा—"कमरे में लोटा नहीं है, कहाँ से लाऊँ?" (यह साधारण नियम है कि नौकर लोग ऐसे मेह-मानों से दिक़ आ जाते हैं)। शायर को जल्दी पड़ी थी, रहा न गया, सहज बोल उठा—"देखती नहीं है, वह क्या लोटा पड़ा हुआ है?" सत्य भला कहाँ तक छुपे! यह सुनते ही दासी भागी और बेगम साहबा के पास पहुँचकर कहा कि "यह मुआ तो देखता है, अन्धा नहीं है। अपने तईं झूठ-मूठ अन्धा बताता है।" उसी दिन वह महल से निकाल दिया गया। परन्तु कहते हैं कि दूसरे दिन वह सचमुच अन्धा हो गया। कैसा उपदेश-जनक दृष्टान्त है। जैसा तुम कहोगे और विचार करोगे, वैसा ही होना पड़ेगा।

गर दर दिले-तो गुल गजरद गुल बाशी,
बर बुलबुले-बेकरार, बुलबुल बाशी।
सौदाये-बला रंजो-बला मी आरद,
अन्देशये-कुल पेशाकुनी कुलबाशी।

भावार्थः—अगर तेरे दिल में पुष्प (शुभ विचार) गुज़रेंगे तो तू

पुष्प (शुभ चित्त) हो जायगा। और यदि अशान्त चित्त बुलबुल, तो तू बुलबुल (अशान्त चित्त) हो जायगा। बला का खफ़कान (विपत्ति का निरन्तर सोच) बला और रंज लाता है, और जब तू सबके हित की फ़िक्र करेगा, तो तू सर्वमय हो जायगा।

बाल्यावस्था में बहुधा देखा होगा कि कुछ बालक आँखें बन्द करके अन्धे होकर उलटे चला करते हैं। उनकी मातायें यह देखकर उनको मारती और रोका करती हैं कि अच्छी-अच्छी मुरादें माँगो। अन्धों के स्वाँग भरते हो, कहीं अन्धे हो न हो जाओ। सच कहा है:—

कृष्ण, कृष्ण मैं करती थी, तो मैं ही कृष्ण हो गई। (मीरा)

आपने देख लिया, अन्धा कहने से अन्धा, वज़ीर के ध्यान से वज़ीर, लार्ड मेयर के ख़याल से लार्ड मेयर बन जाते हैं। बस, अपनी मदद आप करने के लिए, अपनी तरफ अपना ऋण आप चुकाने के लिए, सबसे आवश्यक बात आप लोगों के लिए है विचारों की पवित्रता, उत्साह की वृद्धि, शुभ संस्कार, निर्मल भाव और "मैं सब कुछ कर सकता हूँ" ऐसा उच्च विचार, निरंतर उद्योग और धैर्य !

गर चफ़र्क़-मा निहद सद कोहे—मेहनत रोज़गार।
चीने-पेशानी न बीनद गोशये—अब्रूये—मा।

भावार्थ—यदि समय हमारे सिर पर परिश्रम के सैकड़ों पर्वत रख दे, तो भी हमारी भौं [भ्रू] का कोना हमारे माथे के बल को नहीं देखेगा, अर्थात् हमारे माथे पर बल नहीं पड़ेगा।

अगर्चि कुतब[1] जगह से टले तो टल जाये,
हिमालय बाद[2] की ठोकर से गो फिसल जाये।

१—ध्रुव। २—वायु।

अगर्चि बहर[1] भी जुगनू की दुम से जल जाये,
और आफ़ताब[2] भी क़ब्ले[3]-अ़रूज ढल जाये,
कभी न माहृबे-हिम्मत का हौसला टूटे,
कभी न भूले से अपनी जबीं[4] पै बल आये।

उच्च शूरवीरता और उन्नत विचार का आप यह अर्थ न समझ लें कि अपने तईं तो तीसमारखां ठान लें और दूसरों को तुच्छ मानने लगें। कदापि नहीं। बल्कि अपने तईं नेक और बड़ा बनाने के लिए औरों की केवल नेकी और बड़ाई को ही दिल में स्थान देना उचित है। बुद्ध भगवान् कहा करते थे:— जैसा कोई खयाल करेगा वैसा हो जायगा। उनके पास दो मनुष्य आये। एक ने पूछा कि "महाराज यह जो मेरा साथी है दूसरे जन्म में इसका क्या हाल होगा? यह तो कुत्ते के खयाल रखता है, कुत्ते से कर्म करता है, क्या अगले जन्म में कुत्ता न बनेगा?" दूसरा पहले के विषय में कहता है कि "यह मेरा साथी हर बात में बिल्ला है, क्या अगले जन्म में यह बिल्ला न होगा?" महात्मा बोले कि "भाई, जैसे संस्कार (खयाल) होंगे, वैसे ही तुमको फल मिलेंगे। लेकिन तुम लोग इस सिद्धांत को ग़लत लगा रहे हो। वह तुमको बिल्ला कह रहा है, तुम उसको कुत्ता।" अब विचार करना, वह मनुष्य जो अपने साथी को कुत्ता देखता है, उसका अपना दिल कुत्ते की सूरत पकड़ रहा है। वह ख़ुद ऐसे ख़याल से कुत्ते के संस्कार धारण करता जाता है। पस, जब ऐसा मनुष्य मरेगा तो उसके अन्तःकरण में कुत्ता समा रहा है, अतएव वह स्वयं कुत्ता बनेगा।- और इसी तरह अपने पड़ोसी को बिल्ला समझनेवाला ख़ुद

१—समुद्र। २—सूर्य। ३—उदय काल से पूर्व। ४—मस्तक (पेशानी)।

बिल्ला बनेगा। इस सिद्धांत को विचार से देखना। वे दोष जो हम औरों में लगाते हैं, वे हम में ज़रूर प्रवेश होंगे। राम कहता है कि अपनी मदद आप करने के लिए आत्मकृपा इस बात की इच्छुक है कि हम लोग औरों के छिद्र निकालना छोड़ दें, और अपने सम्बन्ध में भी विचार के समय सिवाय नेकी और .खूबी के और कुछ विचार न आने दें। जैसे गुम्बज से हमारी ही आवाज़ लौट कर आती हुई गूँज बन जाती है, वैसे ही इस गुम्बज़े-नीलोफ़री (आकाश-मंडल) के नीचे हमारे ही संस्कार लौटकर असर करते हुए प्रारब्ध कहलाते हैं।

बद[1] न बोले ज़ेरे[2]-गरदूँ गर कोई मेरी सुने,
है यह गुम्बज़ की सदा[3] जैसी कहे वैसी सुने।

अपने विचारों को ठीक रक्खो। व्यर्थ आकाश को कुमार्गी (कुढंगा) और चर्ख़ (द्यौ) को टेढे चलनेवाला कहना बच्चों की तरह गुम्बज़ को दोष लगाना है। अगर सब कुछ कहीं बाहर ही की प्रारब्ध से होता, तो शास्त्र विधि-निषेध के वाक्यों को जगह न देता। जब शास्त्र यह जानता था कि तुम्हारे स्वाधीन कुछ नहीं है, सब कुछ प्रारब्ध ही है, तो शास्त्र ने क्यों कहा कि "यूँ करो और यूं न करो" और तुम पर जवाब-देही (उत्तरदायित्त्व) किस दलील से लगाई गई ?

दरम्याने-क़ारे-दर्या तख़्त-बन्दम करदई।
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश॥

नदी के भारी वेग के बीच तूने मुझे तख़्ते से बाँध कर मंझधार में डाल दिया है और उस पर तू यह कहता है कि ख़बरदार अपना पल्ला मत भिगोना।

१—बुराई। २—आकाश तले। ३—आवाज़।

तुम्हारे अन्दर वह शक्ति है, कि जो चाहो कर सकते हो। और सच पूछते हो, तो राम कहता है:—

मैंने माना दहर[1] को हक़[2] ने किया पैदा वले[3],
मैं वह ख़ालिक़[4] हूँ मेरी कुन[5] से ख़ुदा पैदा हुआ।

अर्थात्—मैंने माना कि ईश्वर ने संसार को रचा, परन्तु मैं वह सृष्टि-कर्त्ता हूँ कि जिसके कह देने से स्वयं ईश्वर उत्पन्न हुआ है।

पौरुषा दृश्यते सिद्धिःपौरुषाद्धीमतां क्रमः।
दैवमाश्वासना मात्रं दुःख केवल बुद्धिषु॥

अर्थात्—पुरुषार्थ से सिद्धि होती है, और बुद्धिमानों का व्यवहार पुरुषार्थ से ही चलता है। दैवयोग (प्रारब्ध) का शब्द तो बुद्धिमानों में दुःख के समय कोमल चित्त पुरुषों के केवल आँसू पोंछने के लिए है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

परमेश्वर उनकी सहायता करने को हाज़िर खड़ा है जो अपनी सहायता आप करने को तैय्यार हों (God helps those who help themselves)। यह एक ईश्वरीय नियम या कानून-कुदरत है। प्रकृति का यह अटल नियम है कि जब मनुष्य पूरा अधिकारी होगा, तो जो उसका अधिकार है अपने आप उसको ढूँढ़ लेगा। यहाँ आग जल रही है। प्राणवायु (oxygen) खिंच कर उसके पास आ जायगी। अंग्रेजी में एक कहावत है कि "पहले तुम योग्य अधिकारी बनो, फिर इच्छा करो—First deserve and then desire"। राम कहता है कि जब तुम योग्य और अधिकारी होगे, तो इच्छा किये बिना ही मुराद आ मिलेगी।

१—संसार काल, समय। २—ईश्वर। ३—किन्तु ४—प्रजापति। ५—कहना, आज्ञा।

बाँधे हुए हाथों को बउम्मेदे-इजाज़त,
रहते हैं खड़े सैकड़ों मज़मूँ मेरे आगे।

स्वीकृति की आशा से सैकड़ों विषय मेरे आगे हाथ बाँधे खड़े रहते हैं।

"जो पत्थर दीवार में लगने लायक़ है, वह बाज़ार में कब रहने पायगा—The stone that is fit for the wall cannot be found in the way"। जब आप पूरे अधिकारी होंगे, तो आपके योग्य पदवी है और आप हैं। पदवी की तलाश में समय मत नाश करो। अपने तईं योग्य वा अधिकारी बनाने की फ़िक्र करो।

नाख़ुने-ख़ार आके ख़ुद उक़दा तेरा कर देगा वा,
पहिले पाये-शौक़ में पैदा कोई छाला तो हो।

अर्थात्—काँटे का नाखून अपने आप आकर तेरे हृदय की गांठ खोल देगा, पर पहले जिज्ञासा रूपी चरणों में कोई छाला तो हो!

जब सूर्य की ओर मुँह करके चलते हो, तो छाया पीछे भागती फिरती है, जब छाया को पकड़ने दौड़ोगे, तो छाया आगे-आगे भागती चली जायगी।

भागती फिरती थी दुनियाँ जब तलब करते थे हम,
अब जो नफ़रत हमने की, वह बेक़रार आने को है।

दुनिया को जब हम चाहते थे, तो दुनिया हमसे परे हटती जाती थी, जब हमने स्वयं दुनिया से नफ़रत वा उदासीनता करली तो अब दुनिया हमारे पीछे लगने पर तुली है।

गुज़श्तम् अज़ सरे-मतलब तमाम शुद मतलब,
नक़ाबे-चिहरा-ए-मक़सूद बूद मतलब हा।

जब मैं इच्छाओं से परे गया, तो इच्छायें स्वतः पूरी हो गईं।

बहुत सी इच्छाओं में वास्तविक स्वरूप का मुख ढका हुआ था अथवा बहुत सी इच्छायें वास्तविक स्वरूप के मुख का पर्दा बनी हुई थीं।

भिखमङ्गों को हर कोई दुर दुर करता है, तृप्तात्मा के पास मुरादें, इच्छाये स्वयं नमस्कार करने और झुकने को आती हैं।

सौ बार ग़र्ज़ होवे तो धो धो पियें क़दम[1],
क्यों चर्ख़ो-मेहरो-माह[2] पै मायल हुआ है तू।

जापान में तीन तीन सौ, चार चार सौ साल के पुराने चीड़ और देवदार के वृक्ष देखे, जो केवल एक एक बालिश्त के बराबर या कुछ ही अधिक ऊँचे थे। आप ख़याल करें कि देवदार के वृक्ष कितने बड़े होते हैं। मगर कौन इन वृक्षों को सदियों तक बढ़ने से रोक देता है। पूछने पर लोगों ने कहा कि हम इन वृक्षों के पत्तों और शाखाओं को बिलकुल नहीं छेड़ते, किन्तु जड़ें काटते रहते हैं, नीचे बढ़ने नहीं देते। और यह नियम है कि जब जड़ नीचे नहीं जायगी तो वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ेगा। ऊपर और नीचे (या अन्दर और बाहर) दोनों में इस प्रकार का सम्बन्ध है कि जो लोग ऊपर बढ़ना चाहते हैं, दुनिया में फलना-फूलना चाहते हैं, उन्हें नीचे अर्थात् भीतर अंतरात्मा में जड़ें बढ़ानी चाहिए। अन्दर अगर जड़ें न बढ़ेंगी तो वृक्ष ऊपर भी न फलेगा।

नफ़म न नै चो फ़िरो शुद बलन्द मी गरदद,

अर्थात् बाँसुरी में जितनी साँस नीचे उतरती है, उतना शब्द ऊँचा होता है।

मन्सूर से पूछी किसी ने कूचाये-दिलबर[3] की राह,
चुभ साफ़ दिल में राह बतलाती ज़ुबाने-दार[4] है।

❁ ❁ ❁ ❁

१—चरण। २—आकाश, सूर्य, और चन्द्र। ३—प्रियतम की का सा ४—सूली की नोक।

सर हमचो तारे-सुवह वसद दुर कशीदायेम,
आख़िर रसीदायेम ब.खुद आरमीदायेम।

अर्थात्‌ः—माला के डोरे के समान हमने अपने सिर को सौ दानों के अन्दर पुरोया। अन्त में जब अपने तक पहुँचे तो वहीं शान्ति मिली।

आत्म-कृपा (अपने आपकी ओर फ़र्ज़) जो राम कहता रहा है उसके अर्थ किसी प्रकार की .खुदी (अहङ्कार), .खुद-पसन्दी (अहङ्कार-प्रियता), या .खुदग़र्ज़ी (स्वार्थ-परायणता) नहीं है। इसके अर्थ हैं आत्मोन्नति। और आत्मोन्नति वा आत्म-कृपा का मुख्य अङ्ग है चित्त की विशालता अर्थात् चित्त की शुद्धि का इस दर्जे तक उत्पन्न करना कि हमारी आत्मा देश भर की आत्मा का नक़शा हो जाय, जगत् के दिखलानेवाले शीशे का काम देने लग पड़े। देश भर की ज़रूरतों को हम अपनी निजी ज़रूरतें भान (अनुभव) करने लग पड़ें। चाहे लोगों की दृष्टि में हम सारे भारतवर्ष या जगत् भर के भले का काम कर रहे हों, पर हमें वह काम केवल निज का काम मालूम दे। पस अपने चित्त को ऐसा विशाल वा उदार और बड़ा करते जाना कि यह चित्त सारी क़ौम का चित्त हो जाय; यही आत्मोन्नति है। आत्मोन्नति का लक्ष्य है सबके साथ ऐसी सहानुभूति कि—

खूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैली की जो ली,
इश्क़ में तासीर है पर जज्बे-कामिल चाहिए।

अर्थात्‌ः—प्रियतमा लैली की जब नस काटी गई, तो प्यारे मजनूँ की नस नस से रुधिर निकल पड़ा। प्रेम में ऐसा प्रभाव अवश्य है, पर ऐसे प्रभाव के लिए पूर्ण प्रेम चाहिए।

पत्ती को फूल की लगा सदमा नसीम का,
शबनम का क़तरा आँखों में उसकी नज़र पड़ा।

अर्थात्:—मृदु-पवन ने चोट तो पुष्प की पत्ती को लगी, परन्तु इस अभेदात्मा प्यारे के नेत्रों में आँसू दिखाई देने लग पड़े।

जो राम ने कहा है आत्मबल, वह अन्य शब्दों में ईश्वरबल ही है, आपका वास्तविक स्वरूप है, वह सबका स्वरूप है, और वही वास्तव में ईश्वर का स्वरूप है।

मा नूरे-ख़ुदायेम दरीं ख़ाना फ़िताद़ा,
मा आबे-हयातेम दरीं जूये रवानेम।

अर्थात्:—हम ईश्वर का प्रकाश हैं, जो इस शरीररूपी घर में व्याप्त हैं। हम वह अमृत हैं जो इस देहरूपी नगर में बहता है।

यह नामरूप इस वास्तव स्वरूप की निर्मूल छाया के समान है। अपने तईं नामरूप ठानकर जो काम किया जाता है, वह अहंकार और स्वार्थवृत्ति का उकसाया हुआ होता है, और उसका परिणाम दुःख और धोखा होता है। परन्तु जो काम निजानन्द और अभेदता में होता है, अर्थात् जो काम विश्वात्मा की दृष्टि से किया जाता है, वह ख़ुदी (अहंकार) से नहीं बल्कि ख़ुदाई (ईश्वरभाव) से होता है, और उसका फल सदा शान्ति और कार्यसिद्धि होगा। सारे व्याख्यान का तात्पर्य यह है कि ख़ुदी (अहंकार) के स्थान पर ख़ुदाई (ईश्वर-भाव) की आँख से सब सम्बन्धों को देखो, और नामरूप में लंगर डाल बैठने के स्थान पर स्वरूप में घर करो।

बहुत मज़बूत घर है आक़बत[1] का दारे-दुनिया[2] से,
उठा लेना यहाँ से अपनी दौलत और वहाँ रखना।

जो पुरुष नामरूप के आधार पर कारोबार का सिलसिला चला रहा है, वायु की नींव पर क़िला बनाना चाहता है। जीता वही है जो सांसारिक उन्नति व वैभव, अपकीर्त्ति व अव-

१—परलोक। २—संसार।

नति आदि को जलबुद्बुद्वत् या मेघमंडल की छाया सदृश मानता है, और इनका आश्रय नहीं करता।

साय: गर साये-कोहस्त सुबुक मी बाशद,

छाया यदि पर्वत की छाया हो, तो भी तुच्छ ही होती है।

आँखोंवाला केवल वही है जिसकी दृष्टि बाह्य जगत् को चीर कर पदार्थों की स्थिरता पर न जमकर, और लोगों की धमकी और प्रशंसा को काट कर एक तत्त्व पर जमा रहती है।

"नहीं है कुछ भी सिवाय अल्लाह के"। ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है। सचेत केवल वही है जो हर समय उत्तम स्वरूप, सुन्दर स्वरूप अर्थात् वास्तव स्वरूप को देखता हुआ आश्चर्य की मूर्ति हो रहा है, अथवा आश्चर्य स्वरूप बन रहा है।

काश देखो मुझे, मुझे देखो।
हर सरे-मू से चश्मे-हैरत हो॥

खुब गया जिसके दिल में हुस्न मेरा।
दङ्ग सकते का एक आलम थो॥

अर्थात्:—ईश्वर करे कि आप मुझे अवश्य देखें, और रोम रोम से आप आँख-भौचक्का (विस्मित) हों। जिसके चित्त में मेरी छवि समा गई, उसके यहाँ मूर्च्छावत् विस्मय दशा व्याप्त हो गई।

स्वप्न में किसी को धन मिला। इस धन के जो धनी बने, वे मूर्ख हैं। इसी प्रकार इस स्वप्नरूप संसार की वस्तुओं के आधार पर जो जीता है, वह जीता ही मर गया। फर्ज-ऊला अथवा आत्म-कृपा की पूर्णता यही है कि:—

तू को इतना मिटा कि तू न रहे,
और तुझ में दूई[1] की बू न रहे।

१—द्वैत।

यह परिच्छिन्न अहंकार तथा अहंता, इसका नाम तक मिट जाय, निशान तक न रहने पाये।

तो मवाश अस्ला ! कमालीनस्तोवस,

* * *

तु .खुद हिजाबे-.खुदी ऐ दिल ! अज़ मियां बरखेज़।

* * *

न दारे आख़रत नै दारे-दुनियाँ दर नज़र दारम,

ज़ि इश्क़त कार चूँ मन्सूर बा दारे- दिगर दारम।

अर्थात्:—रे प्यारे ! तुझ में तू न रहे, यही पूर्णता है।

ऐ दिल ! तू अपना परदा आप है, बीच से उटजा।

मेरी दृष्टि में न लोक है, न परलोक। मन्सूर के समान तेरे प्रेम में दूसरे की सूली से काम रखता हूँ।

अहंकार (परिच्छिन्नता) को स्थिर रखकर जो बड़े बनते हैं वे फरौन व नमरूद हैं। परिच्छिन्नता को मिटानेवाला स्वयं ईश्वर, शिवोऽहम है।

रस्सी में किसी को साँप का भ्रम हो गया। अब अगर उसके लिए रस्सी है तो साँप नहीं, और साँप है तो रस्सी नहीं। एक ही रहेगा। .खुदी है तो .खुदाई नहीं, .खुदाई है तो .खुदी नहीं !

तीरे-निगाह चूँ निशस्त मसकने-.खुद जां गुज़ाश्त,

ताक़ते-मेहमाँ न दाश्त .खाना व मेहमाँ गुज़ाश्त।

* * *

ता शाना सिफ़त सर न नही दर तहे-अर्रा,

हरगिज़ व तरे-ज़ुल्फ़े-निगारे न रसी।

अर्थात्:—प्यारे की दृष्टि का तीर बैठते ही जान (प्राण) ने अपना स्थान छोड़ दिया। अतिथि सत्कार की शक्ति न रखने के कारण अतिथि के लिए अपना घर छोड़ दिया। कंघी के समान जब तक तू अपने

अहंकाररूपी सिर को ज्ञानरूपी आरा के नीचे नहीं रखेगा, तब तक तू प्यारे के सिर के बालों को भी नहीं छू सकेगा।

जब तक कंघी की तरह सिर आरा के नीचे न रखोगे यार की ज़ुल्फ़ तक नहीं पहुँच सकते।

ता सुर्मा सिफत सूदह न गर्दी तहे-संग,
हर्गिज़ ब सफा चश्मे-निगारे न रसी।

जब तक सुर्मा की तरह पत्थर तले पिस न लोगे, असली यार की आँखों तक नहीं पहुँच सकते। अगर कहो कि आँखें नहीं तो यार के कानों तक ही किसी तरह पहुँच हो जाय, तो भी जब तक स्वार्थपरायणता दूर न होगी, जब तक यह अहंकार मर न लेगा, जब तक ख़ुदी गुम न होगी, यार के कानों तक नहीं पहुँच सकते। क्योंकि कान में रहता है मोती, ज़रा उसकी दशा देख लो।

ता हमचो दुरे-सुफ़ता नगरदी बा तार,
हरगिज़ बबिना गोशे-निगारे न रसी।

जब तक मोती की तरह तार से न छिदोगे, यार के कान तक भी कदापि नहीं पहुँच सकते।

ता ख़ाके तुरा कूज़ा न साज़न्द कलालां,
हरगिज़ बलबे लाले-निगारे न रसी।

अर्थात्—कुम्हार (ज्ञानवान्) जब तक तेरी अहंकाररूपी मिट्टी के आबख़ोरे न बना लेंगे, तब तक प्यारे के लाल ओंठों तक तू पहुँच न सकेगा।

पस अज़ मुर्दन बनाये जायेंगे साग़र मेरी गिलके,
लबे-जानां के बोसे ख़ूब लेंगे ख़ाक़ में मिलके।

अर्थात्—मृत्यु के बाद मेरी मिट्टी के आबख़ोरे (प्याले) बनाये जायेंगे, तब हम मिट्टी में मिलकर प्यारे के ओंठ ख़ूब चूमेंगे।

व्याख्या—इन कविताओं में आँख, कान, ओंठ आदि से यह आशय नहीं कि परमेश्वर के आँख, कान, नाक हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे एक ही प्रियात्मा को प्रसन्न करने के लिए उसके कान को राग सुना सकते हैं, या उसकी आँख को सुन्दर रूप दिखा सकते हैं, या नाक को फूल सुंघा सकते हैं इत्यादि। कोई किसी उपाय से इस प्यारे को प्रसन्न कर सकता है, कोई किसी दूसरे उपाय से। लेकिन कोई उपाय ऐसा नहीं है जिससे बाह्य अहंकार की मृत्यु के बिना काम निकल सके। निःसन्देह कोई वैष्णव बनकर परमेश्वर को पूज सकता है, कोई शैव रहकर भक्ति कर सकता है। कोई मुसलमान की अवस्था में पूजा करे। कोई ईसाई की हालत में प्रार्थना करे, लेकिन वैष्णव, शैव, मुसलमान, ईसाई आदि कोई हो, आत्म-दर्शन व ईश्वर-प्राप्ति तभी होगी जब परिच्छिन्नता का अन्त हो जायगा। अगर कहो कि बाल, आँख, कान और ओंठ तक नहीं, तो ईश्वर करे, प्यारे के हाथ तक ही हम पहुँचते, तो—

ता हम चो कलम सर न निही दर तहे-कारद,
हरगिज ब सर अंगुश्ते-निगारे न रसी।

जब तक लेखनी के समान सिर चाकू के नीचे न रख लोगे, कदापि प्यारे की उँगलियों तक नहीं पहुँच सकते। अगर कहो कि हमें सबसे नीचे रहना स्वीकार है। प्यारे के चरण तक ही पहुँच हो जाय—

ता हमचो हिना सूदह न गरदी तहे-संग,
हरगिज़ ब कफे-पाये-निगारे न रसी।

जब तक मेंहदी के समान पत्थर के नीचे पिस न जाओगे, तब तक प्यारे के पैरों तक कदापि नहीं पहुँच सकते। तात्पर्य—

ता गुल शुदा व चुरीदा न गरदी अज़ शाख़,
हरगिज़ ब गुले-हुस्ने-निगारे न रसी।

जब तक फूल की तरह शाखारूपी संबंधों से काटे न जाओगे, तब तक किसी सूरत से प्यारे तक पहुँच नहीं सकते।

बांसुरी से किसी ने पूछा, कि "अरी बांसुरी! क्या बात है कि वह कृष्ण, वह प्यारा मुरली मनोहर, जिसके पलकों के इशारे से राजाधिराज काँपते हैं; भीष्म, अर्जुन, दुर्योधन समान महाराजाधिराज जिसके चरणों को छूने के भूखे प्यासे हैं; जिसकी चरणरज अभी तक राजा-महाराजा लोग मस्तक पर धारण करते हैं; और चन्द्रमुखी गौरांगनायें जिसके मधुर हास्य (मृदु-मुस्कान) को देखने के लिए तरसती हैं; वह कृष्ण तुझको चाह और प्यार से ख़ुद बारम्बार चूमता है? एक ज़रा सी बांस की लकड़ी, तूने ऐसे भगवान् कृष्ण पर क्या जादू डाला? तुझ में यह करामात कहाँ से आ गई? बांसुरी ने उत्तर दिया कि मैं सिर से लेकर पैरों तक (अपनी परिच्छिन्नता अर्थात् अहंकार को दूर करके) बीच से खाली हो गई हूँ। फल यह मिला कि वह कृष्ण स्वयं आकर मुझे चूमता है। जिसके चरणों को चूमने को लोग तरसते हैं, वह शौक से मुझे चूमता है। मुझसे चित्ताकर्षक स्वर फिर क्यों न निकलें? मुझ में राम का दम (श्वास) है, मेरे मधुर स्वर उसीके स्वर हैं।

तही ज़ ख़्वेश चो नै शौ ज़ पा ता सरे-ख़ुद,
बगरना बोसे-लबे-लाले-नाई आसां नेस्त।

भावार्थ:—बांसुरी के समान तुम सिर से पाओं तक अहंकार से खाली हो जाओ, नहीं तो बांसुरी बजानेवाले प्यारे के ओंठों का चुम्बन मिलना सुगम नहीं है।

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। उप०

धीर पुरुष इस संसार से मुँह मोड़ कर अमृत को पाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

९१८